॥ ओ३म् ॥

सीधी सच्ची बात

लेखक:

धर्मपाल आर्य,

रेलवे रोड़, नरवाना (हरियाणा)

फोन 40659

ओ३म्

सीधी सच्ची बात

लेखक
धर्मपाल आर्य
नरवाना (हरियाणा)

लेखक का परिचय

समाज सेवी धर्मपाल जी आर्य

वैदिक धर्म के अनुयायी, महर्षि दयानन्द के कट्टर भक्त, वेदों में अगाध आस्था रखने वाले श्री धर्मपाल जी आर्य का जन्म १७ अक्तुबर १९२९ को हरियाणा प्रान्त की पावन भूमि ग्राम सौंगल, तहसील कैथल में हुआ। इनके पिता श्री अनन्तराम जी आर्य एवं माता श्री मती चन्द्रिका देवी आर्या की वैदिक सिद्धान्तों में अटूट आस्था थी। श्री धर्मपाल आर्य बाल्य काल से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। कुशाग्र बुद्धि के कारण विद्यालय में सदा चर्चित रहते थे। हिन्दी साहित्य में रूचि होने के कारण इन्होंने प्रभाकर किया। साथ ही बी.कॉम. की परिक्षा १९५२ में उत्तीर्ण की। आर्य समाज ने हैदराबाद में सत्याग्रह प्रारम्भ किया। उस सत्याग्रह में श्री धर्मपाल जी आर्य ने दिन–रात एक करके स्थान–स्थान पर घूम कर धनराशि एकत्रित करके बहुमूल्य योगदान दिया। आर्य समाज नरवाना की चहुँमुखी प्रगति के लिए तथा सम्बन्धित आर्य शिक्षण संस्थाओं में धर्मिक शिक्षा के लिए सदैव प्रयासरत रहे। आर्य शिक्षण संस्थाओं तथा आर्य समाज नरवाना के प्रधान, उपप्रधान, मंत्री पदों को अनेक वर्षो तक सुशोभित किया एवं आर्य समाज में चेतना लाने के लिए प्रयासरत रहे। अपने सुपुत्रों प्रियवर आदित्य आर्य एवं अनिल आर्य को सदा ही आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में नियमित रूप से साथ लेकर जाते रहे और बच्चों में आर्य समाज के प्रति अटूट आस्था भरी।

अविभाजित पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अनेक वर्षो तक अन्तरंग सभा के सदस्य रहे। हरियाणा प्रान्त का निर्माण होने पर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा की अन्तरंग सभा के सदस्य के रूप में अनेक वर्षो तक सदस्य रहे। आर्य समाज की सर्वोच्च सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दहेली के सदस्य रहकर अपने बहुमूल्य सुझावों से वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार में अविस्मरणीय योगदान देते रहे। आर्य कुमारों, नवयुवकों में चेतना लाने के लिए आर्य वीरदल की शाखाओं को निरन्तर चलाने की प्रेरणा देते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के दस वर्ष बाद १९५७ में हिन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति पूर्ण समर्पित श्री धर्मपाल जी आर्य ने सरकारी नौकरी को छोड़कर इसमें भाग लिया तथा नरवाना से हिन्दी प्रेमियों का सबसे पहला जत्था लेकर रोहतक में गिरफ्तारी दी। मधुरभाषी, मिलनसार, विनम्र, सादगी के प्रतीक श्री धर्मपाल जी आर्य ने अपने पुत्र–पुत्रियों के विवाह पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न कराए। आर्य सिद्धातों के उद्भर विद्वान ने अपने जीवन में आर्य संस्थाओं के प्रमुख पर्वो साप्ताहिक सत्संगों में प्रेरणादायक व्याख्यान देकर नवयुवकों को आर्यसमाज के प्रति आकर्षित किया।

कलम के धनी, उच्चकोटि के लेखक, प्रबुद्ध कवि श्री धर्मपाल जी ने आर्य वीर विजय, सर्वहितकारी, सार्वदेशिक, आर्यजगत, पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठों के लिए अनेक कविताएं लिखी। महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द एवं आर्य समाज के सिद्धान्तों से ओतप्रोत कविताएं प्रायः लिखते रहते थे। परमपिता परमात्मा में अटूट आस्था थी। पिछले कुछ वर्षो से रूग्णावस्था में थे। बीमारी के कारण एक पैर भी कट गया था असहाय पीड़ा को सहन करते हूए भी उनके मुख से "ओ३म" शब्द ही निकलता था। उनके मुख से निकलने वाली निरन्तर आवाज "प्रभु तूने जो किया अच्छा किया" आज भी कानों में गूँजती है दुख की पीड़ा की झलक कभी दिखाई नहीं दी। परमात्मा का सौभाग्य है कि पैर से असहाय हो जाने पर भी उनके सुपूत्रों ने आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों एवं वार्षिक उत्सवों में उन्हें कभी अनुपस्थित नहीं रहने दिया। दोनों पुत्र इस अवसर पर कार्यक्रम में ले जाने से कभी नहीं चूके। १७ फरवरी १९९३ को श्री धर्मपाल जी का निधन हो गया। आर्य समाज नरवाना का आधार स्तम्भ ढ़ह गया। सैकडों नवयुवक जो प्रत्येक कार्यक्रम में उनका मार्गदर्शन लेते थे, अपने मार्गदर्शक के अभाव में दिशा विहीन से दिखाई दे रहे हैं।

समर्पण

दादी दाखां देवी

(भाग्यवंती)

सर्व श्री अनन्त राम, जोगध्यान, नन्द लाल

की पूज्य माता हमारी दादी

के चरणों में सादर समर्पित

समर्पित जीवन श्रीमती भागवन्ती देवी

श्रीमती भागवन्ती देवी उर्फ दाखा देवी एक समाज सुधारिका,धर्मिक प्रवृति एवं परोपकार की भावना से ओत प्रोत महिला थी। उनके पति श्री मामचन्द जी इनके प्रत्येक कार्य में सहायक सिद्ध होते थे। वैदिक घर्म के घुनी, सच्चे आर्य समाजी श्री अन्नतराम जी आर्य ने दाखादेवी नाम को बदल कर भागवन्ती रख दिया जिस समय नारी जाति को भारी कठिनाई का सामना करना पडता था उस समय श्रीमती भागवन्ती डिलीवरी केसों में पहुचँकर सहायता प्रदान करती थी। महिलाओं को नया जीवन ही मिल जाता था। उनमें छुआछात की भावना लेशमात्र भी नहीं थी। किसी भी जाति की महिला हो उन्हें सहायता देती थी उनमें परोकार की प्रबल भावना थी। समाज में फैले अंधविश्वासों को दूर करने में भारी योगदान दिया। नारी जाति को सदा अंधविश्वासों से सावधान करती रहती थी। उनमें दान की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी, वही संस्कार उनके पुत्रों श्री अनन्त राम, श्री जोगध्यान एवं श्री नन्द लाल, मे भी विरासत के रूप में आए। श्री मती भगवन्ती का जीवन परिवार के लिए ही नही अपितू, समाज कल्याण में व्यतीत हुआ। इस क्षेत्र की महिलाएं उन्हें सच्ची समाज सेविका परोपकारिणी मानती हैं।

ओ३म

स्वस्ति पंथाम् अनुचरेम्

माननीय सज्जनों,

आज का युग बहुत ही विकासशील, प्रगतिशील, एवं वैज्ञानिक रूप में बड़ा ही आगे बढ़ा हुआ माना जाता है। ज्यूं–२ शिक्षा का प्रसार हो रहा है। त्यूं–२ नास्तिकवाद एवं भ्रमजाल फैल रहे हैं, ईश्वर की सत्ता एवं धर्म–कर्म को नगण्य मानकर सब कुछ रोटी, कपड़ा और मकान के लिए ही किया जा रहा है। धर्म के विपरीत अर्थ किए जा रहे हैं। मत मंतातरों एवं विविध प्रकार के पूजा–पाठ के प्रकारों को धर्म की संज्ञा दी गई है। वेद ओर शास्त्रों की बातों को पुराने जमाने की बातें कह कर नकारा जा रहा है। जबकि वास्तविकता ये है कि जो कुछ वेदों के अन्दर बताया गया है। वहां तक तो आज के वैज्ञानिक रोग बहुत ही दूर है। वेद का मार्ग ऐसा मार्ग है जिसके अनुसार चलने से मनुष्य वास्तव में मानव बन जाता है। जिस प्रकार वेद धर्म और ईश्वर के बारे में भ्रांतियां फैली हुई है। आर्य समाज जिसके बारे में भी ऐसी भ्रांतियां बरती जा रही हैं। आर्य समाज क्या मानता है, अभी बहुत से लोगों को पता ही नहीं। कुछ ऐसी भ्रांतियाँ जानकर ही ये पुस्तिका लिखने का प्रयास किया है। बहुत ही सीधे–साधे ढंग से और सर्व साधारण की भाषा में ये पुस्तिका लिखी गई है। इसका आकार बड़ा न हो जाये, इसी कारण से इसके अन्दर कोई दोहा, श्लोक और मंत्रादि उद्धत नहीं किए हैं कोई भी साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति एक ही बैठक में इस पुस्तक को पढ़ ले, ऐसा प्रयास किया गया है। यदि पक्षपात छोड़ और धैर्यपूर्वक चिंतन मनन किया जाये, तो इसमें लिखी साधारण बातें ही अनेकों भ्रांतियों को दूर करने में सफल होंगी। इस पुस्तक में किसी पर कोई आक्षेप नहीं किया गया है। न ही कोई किसी की आलोचना करने का हमारा उद्देश्य है। सो जो बात जैसी हो उसको उसी प्रकार समझा जाय तो बड़ा उपकार होगा।

विनीत

धर्म पाल आर्य।

नरवाना।

आमुख

श्री धर्मपाल जी आर्य मेरे अभिन्न हृदय मित्र थे। वह बहुत स्वाध्यायशील आर्य पुरूष थे। उच्च शिक्षित थे। बहुत विनम्र थे। हठ दुराग्रह से दूर थे। ईश्वर और वेद के प्रति उनकी अडिग श्रद्धा थी। उनके मन में वैदिक प्रचार के लिए बहुत अरमान थे। सैद्धान्तिक दार्शनिक चर्चा में वह बड़ा रस लिया करते थे। कभी-कभी बड़ी गूढ़ शंकाये किया करते थे। इससे उनके गहन चिन्तन का परिचय मिलता था। यदि उनका शरीर साथ देता तो बहुत सम्भव है कि वह आश्रम मर्यादा का पालन करते हुए पिछला जीवन सन्यास लेकर वैदिक धर्म प्रचार के लिए देते। परन्तु विधाता का विधि विधान ही कुछ ऐसा है कि यह आवश्यक नहीं कि जो हम चाहें, वही हो।

श्री धर्मपाल जी कवि भी थे और लेखक भी थे। उनके विस्तृत स्वाध्याय का पूरा पूरा लाभ तो हमें नहीं पहुंच सका फिर भी सरल भाषा में वैदिक धर्म के सब मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों पर आपने एक छोटी सी पुस्तक लिख दी। यह पुस्तक सरल सुबोध है। मैं चाहता हूं कि इसका सर्वत्र प्रचार हो। अच्छा होता यदि यह पुस्तक उनके जीवनकाल में ही छप जाती। यह प्रशंसनीय बात है कि उनके दोनों सुपुत्रअपने पिता जी की यह अमूल्य कृति प्रकाशित करके पितृऋण चुकाने का यश लूट रहे हैं।

श्री धर्मपाल जी सिद्धान्त निष्ठ आर्य थें उनकी सुपुत्री रक्षा का १९५७ में जन्म हुआ। धर्मपाल जी किसी गांव से प्रचार करके घर लौटे तो उनकी माता जी उन्हें देखकर रो पड़ी। धर्मपाल जी समझ गए कि घर में चौथी पुत्री ने जन्म लिया है। आपने अपनी माता जी से कहा, आप स्त्री होकर एक स्त्री के जन्म पर रो रही हैं और मैं पुरूष होकर भी प्रसन्न हूं। ईश्वर की व्यवस्था शिरोधार्य करनी चाहिए।

इससे पाठक पुस्तक के लेखक के ऊंचे चरित्र को जान सकते हैं। मृत्यु से कुछ समय पूर्व उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की थी कि मैं उनकी इस पुस्तक का आमुख लिखूं। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सब धर्म प्रेमियों से प्रार्थी हूं कि इस प्रचारोपयोगी का अधिक से अधिक प्रसार करें।

विनीत

प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु

सम्मति

श्री धर्मपाल जी आर्य द्वारा लिखित पुस्तक पूर्ण मनोयोग से पढ़ी। वे सच्चे आर्य समाजी थें। पुस्तक का एक एक पृष्ठ इस बात की मुहँ बोलती तस्वीर है। लेखक ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझाते हुए पाठकों को प्रेरणा दी है कि समाज में अपने को गुरू, पैगम्बर, भगवान के अवतार बताने वालों से बचो। लेखक ने समाज में फैल रही बुराईयों, अंधविश्वासों को दूर करने का भरसक प्रयास किया है। श्राद्ध, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदि बुराईयों को सहजता से समझाया है। लेखन का ढंग इस प्रकार का है इन बुराईयों में ग्रस्त व्यक्ति भी प्रभवित हुए बिना न रह सकेगा। सभी आश्रमों के महत्व को प्रदर्शित किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक जो भी पढ़ेगा वह सामाजिक कुरीतियों से बच जाएगा। सुख–दुख,स्वर्ग–नरक को सुन्दर ढंग से समझाया गया है और मानव को अपना दैनिक जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए यह समझाया गया है। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसी उपयोगी पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है। पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल होगी इस कामना के साथः–

इन्द्रजीत

प्रधान आर्य समाज नरवाना

ओ३म्

ओं विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव।
यदभद्रं तन्न आसुव।

हे सच्चिदानन्द जगत पिता परमात्मा हमारे सभी दुर्गुणों दुर्व्यसनों एवं विकारों को हम से दूर कीजिए और जो सदगुण हैं वे हमें प्राप्त कराइये।

कुछ भ्रान्ति

बहुत से लोगों में यह भ्रान्ति फैली हुई है कि आर्य समाज वाले किसी बात को मानते ही नहीं। न ईश्वर को मानें न देवी देवता को मानें। धर्म, कर्म, पाठ, पुजा, तीर्थ, स्नान, दान दक्षिणा, श्रद्धा श्राद्ध आदि किसी पर विश्वास यह न रखें। कोई बात हो कह देते हैं कि हम तो आर्य समाजी हैं। हमारा ऐसी बातों पर विश्वास नहीं। समझ में नहीं आता आखिर ये मानते क्या हैं। कुछ भी तो नही मानते।

अवतारों, पीर पैगम्बरों, मढ़ी मस्तान दरगाहों को तो सभी दुनियां मानती हैं पर ये इनको भी मानने से इन्कार करते हैं।

परन्तु ऐसी बात समझना और कहना एक बहुत बडी भ्रान्ति है जो आर्य समाजियों के बारे लोगों में फैली हुई हैं।

आर्य समाज की स्थापना महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सन १८७५ की। उस समय में जो हालात थे उसकी कल्पना भी आज नहीं की जा सकती। ईश्वर और उसके दिए वेद ज्ञान को लोग भूल बैठे थे। धर्म कर्म को भुला दिया था। पैसा ही धर्म कर्म रह गया था । सैंकडों मत मतान्तर इस देश में फैल चुके थे।सब की भिन्न मान्यताएं थी। धर्म के नाम पर बडे बडे महन्त और मठाधीश अपनी बातें मनवा कर मनमानी करने लगे थे। एक धर्म पुस्तक नहीं रह गया था। मन घडन्त किस्से कहानियां को ही लोग शास्त्र की बातें मानने लग गए थे। जो व्याभिचार, भ्रष्टाचार और अत्याचार धर्म के नाम पर होने लगे थे। उसका उदाहरण संसार में कहीं भी न था। माताओं बहनों का मान सम्मान नही रह गया था। यज्ञ कर्मो में पशु बली देना ही धर्म कर्म में शामिल हो गया था। इन बातों को देखकर लोगों का धर्म और ईश्वर से विश्वास उठता जा रहा था। नास्तिक वाद को बढावा मिलने लगा था। इन हालात में मुसलमान और ईसाई इस देश में अपने पांव जमाने लगे थे। वे तरह तरह के आक्षेप राम, कृष्ण, हिन्दु देवी देवताओं पर लगाते और उनका उत्तर तक कोइ न देता और परिणाम यह हुआ कि हजारों लाखों की संख्या में भारत वासी मुसलमान और ईसाई बनने लगे थे।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इन सब मत - मतान्तरों धर्म के ठेकेदारों ओर ईसाई मुसलमानों को ललकारा। वास्तविक वेद धर्म को लोगों के समक्ष रखा। अज्ञानता और अन्धविश्वास को दूर भगाने के लिए आर्य समाज की स्थापना की। और धर्म परिवर्तन की जो बाढ सी इस देश में आई थी उसको तुरन्त रोकने का प्रयास किया।

आर्य समाज न होता तो राम, कृष्ण का नाम इस देश से मिट गया होता और आज़ भारत देश में केवल ईसाई और मुसलमान ही नजर आते। आश्चर्य तो इस बात का है कि अपने रक्षक आर्य समाज के बारे में अब भी लोगों के दिलों में अनेकों भ्रान्तियाँ अपना घर बनाए बैठी है। ऐसे लोगों को पता होना चाहिए कि आर्य समाजी ईश्वर धर्म कर्म, देवी देवता, सामाजिक नियम, कायदे कानून, आपस के आचार व्यवहार आदि सबको मानते हैं। यदि यह बात न हो तो वे इस संसार में रहने योग्य हो ही नही सकते। धर्म कर्म कायदे कानून न मानने वालों की गणना तो पशुओं में होती हैं। जिनका आवास जंगल के सिवाय और कहीं नही।

मुझे एक बात याद आती है जिसका यहां उल्लेख करना असम्भव न होगा। एक बार की बात है कि हम तीन चार मित्र बैठे आपस में बातें कर रहे थे। बातें करते करते बात का मोड ईश्वर व धर्म की और हो गया एक मित्र सहसा कह उठे कि भई आर्य समाजी तो ईश्वर को नही मानते। फिर तुम ईश्वर को क्या जानो इस पर मैने उसी लहजे मे हंसी - हंसी में कह दिया कि ईश्वर को तो केवल आर्य समाजी ही मानते हैं और संसार का कोई अन्य प्राणी उसे नहीं मानता। इस पर वे मित्र बडे आश्चर्य चकित हुए और कहने लगे कि इतनी बडी बात आपने कह कैसे दी। फिर कुछ गम्भीर हो कर उन्होंने कहा कि क्या वे सब लोग जो दिन रात माला फेरते रहते हैं मन्दिरों में घण्टे घडियाल खडकाते नहीं थकते पूजा पाठ और कीर्तन करते रहते हैं और इसी प्रकार ईसाई और मुसलमान व अन्य मत वाले अपने अपने ढ्ंग से अपने इष्ट देव का नाम जपते हैं ईश्वर को नहीं मानते।

तुम लोग जो कभी एक फूल की पत्ती और खांड का एक बताशा तक किसी मन्दिर में नहीं चढाते; कैसै कह सकते हो कि केवल तुम ही ईश्वर को मानते हो और अन्य कोई नहीं मानता।

मैने संक्षेप में कुछ बातें उन्हें बताई। मैं उन्ही को नीचे दे रहा हूं ताकि लोगों की भ्रान्तियां जो आर्य समाजियों के बारे में फैली हुई हैं, दूर हो सकें। इन व्याख्याओं को आर्य समाज वाले मानते हैं। और इनका प्रचार प्रसार आर्य समाज के मंच से सदैव होता रहता है। इनसे मेरी इस बात की सत्यता भी प्रकट हो जाएगी कि केवल आर्य समाज ही ईश्वर को उसके वास्तविक अर्थो में मानते हैं जबकि अन्य लोग नहीं।

ईश्वर

हम जिस सृष्टि में रह रहे हैं यह कितनी सुन्दर, सुसज्जित, सुनियोजित और मनोरम हैं कि बस देखते ही बनता है। कितने सुन्दर पर्वत, नदी नाले, जंगल, उनमे हरे हरे वृक्ष और पौधे, लाखों प्रकार के भिन्न आकृति व करतब वाले उनके पत्ते व रंग बिरंगे पुष्प भीनी भीनी सुगन्ध बखेर रहे हुए मन को मोह लेते हैं। लाखों प्रकार के भिन्न भिन्न जीव जन्तु पक्षी चहचहाते हुए बडे भले लगते हैं। करोडों की सख्यां में मानव शरीर धारी भिन्न भिन्न शकल धारण किए हुए हैं और तो और उनके अंगूठे एवं आधा इंच के भाग में ऐसी लकीरें बनी हुई हैं कि किसी के भी अंगूठे का निशान करोंडों व्यक्तियों में भी किसी दूसरे के साथ नहीं मिल सकता। उसमें अवश्य भिन्नता पाएगी। क्या यह सब कुछ अकस्मात या अपने आप बिना किसी के बनाए बन गया। नहीं। इन के बनाने वाली कोई महान शक्ति है। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि लाखों की संख्या में सूरज, चांद, सितारे, एक दूसरे के चारों और घूम रहें हैं। सबके निश्चित मार्ग हैं। दिन रात ओर भिन्न भिन्न ऋतुएं अपने अपने समय पर आती हैं और यह चक्कर अनादि काल से नियमित रूप से चल रहा है। कभी कोई दुर्घटना घटी प्रतीत नहीं होती। क्या यह बिना चलाए ही हो रहा है। इनका संचालन कर्ता कोई नहीं है। और हमें यह मानने पर विवश होना पडता है कि कोई ऐसी शक्ति है जो सब कुछ रच कर संचालन कर रही है। सो इस संसार की रचना, पालन पोषण करना एवं सभी प्राणियों को कर्मानुसार फल देने वाली केवल एक ही शक्ति है जिसका नाम ईश्वर हैं। गुणों के आधार पर ईश्वर के अनेकों नाम और भी हैं। इन नामों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, सूर्य, अग्नि शिव इत्यादि सुविख्यात हैं। ओ३म् प्रभु का मुख्य नाम है।

ईश्वर के गुण

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरुप, अजन्मा, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र हैं। वह न जन्म लेता है, न बूढा होता है और न ही मरता है। वह निराकार और निर्विकार है। उसकी कोई शक्ल, सूरत व रुप नहीं हैं। उसकी कोई मूर्ति नहीं बन सकती। वह हर प्रकार के दुख, दर्द - कलेश से मुक्त हैं।

वह सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि अर्थात् कण कण में रमा हुआ है। उसने समस्त विश्व को धारण किया हुआ है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म है। और स्थूल से स्थूल है।

वह सर्वज्ञ है। जो कुछ संसार में कहीं भी होता या हो रहा है उसको सब ज्ञात होता है। उससे छिपा कर कोई कर्म नहीं किया जा सकता। उसके लिए भूत या भविष्य

कुछ भी नहीं। वह वर्तमान हीं हैं।वह सर्वशक्ति मान हैं। उसके अपने विधान अनुसार जो कार्य उसके करने के हैं उसमें उसे किसी की भी कोई सहायता की आवश्यकता नहीं। वह सब कार्य अकेला ही स्वंय अपनी शक्ति से कर लेता हैं।

उसका कोई सहायक नहीं। वह सब का सहायक हैं। वह किसी को अपना प्रतिनिधि बनाकर नहीं भेजता न हीं कोई पीर पैगम्बर उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। उसकी तरफ से कोई फ़रिश्ता आदि प्राणियों के कर्मो का लेखा जोखा नहीं रखता और कभी किसी को किसी के कर्मो का फल देते समय उसका हिसाब किताब पूछने की न उसे आवश्यकता हैं।

सभी प्राणियों को उनके कर्मो का फल यथा समय देता हैं। उसने कर्मो को फल देने के लिए कोई दिन निश्चित नहीं किया हुआ। उसके न्याय में न कोई देर हैं, न कोई अन्धेर हैं। जो यह कहा है कि उसके दरबार में 'देर तो हैं पर अंधेर नही,' सही नहीं।

कर्म फल देने में वह किसी की कोई सिफारिश या भेंट पूजा को नहीं मानता। न कोई रिश्वत उसके दरबार में चलती है। कोई कितना ही प्रयत्न करे। कर्मो के फल से कोई छुटकारा नहीं। शुभ कर्मो का उत्तम फल और बुरे कर्मो का बुरा फल अवश्य ही मिलेगा। जन्म जन्मांतरों में किए हुए कर्मो का फल संचित सरुप में किसी भी जन्म में मिल सकता हैं यह उसके न्याय अनुसार उसके द्वारा नियत समय पर निर्भर करता है।

बहुत से लोग ईश्वर के तीन भिन्न रुप मानते हैं और एक की बजाए तीन ही शरीर मानते हैं। उनके द्वारा तीन पृथक नाम जो दिए गए वे हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा द्वारा संसार की रचना की जाती है, उसका निवास वे ब्रह्म लोक में मानते हैं। दूसरा सरुप विष्णु भगवान का है और वह संसार का पालन पोषण करता हैं। वह क्षीर सागर में शेष शैया पर विश्राम करता है। तीसरा सरुप महेश का है जिसे शिव शंकर भी कहते हैं। वह संसार का संहार करता है और उसका विश्राम स्थान कैलाश पर्वत पर है। उनके अनुसार सृष्टि का रचता पालन पोषण कर्ता एवं संहर्ता एक ही ईश्वर न हो कर तीन भिन्न देवता हैं। बहुत से उसे अल्लाह और खुदा नाम देकर कहते हैं कि वह चौथे और सातवें आसमान पर एक तख्त पर बैठा रहता है और उस तख्त को चार फरिश्ते अपने कंधों पर उठाए रहते हैं। परन्तु यह सब कुछ सही नहीं है। ईश्वर एक है।वहीं संसार का रचता, पालन पोषण कर्ता एवं प्रलयकर्त्ता है। उसके कोई भिन्न स्वरुप नहीं। वह स्वयं ही सब कुछ करता है। वह किसी एक स्थान पर न रहकर सर्वत्र और सर्वव्यापक है अर्थात सकल ब्रह्माण्ड में ही उसका वास है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब परमात्मा सर्वव्यापक और सर्वत्र है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता? इसका उत्तर तो बहुत ही सहज है। पहली बात तो यह

है कि ईश्वर निराकार है। आकार वाली वस्तु ही भौतिक आंखों से दिखाई देती है। दूसरे उनसे यह पूछा जाए कि उनके अनुसार ब्रह्मा विष्णु, महेश, अल्लाह, खुदा तो साकार और एक देशीय है। और उनके विश्राम स्थल को भी वे मानते हैं, इस बात के होते हुए भी कि आजकल तो विज्ञान की कृपा से उपग्रह बनाकर मनुष्य ने सब पर्वतों, जंगलों, समुंद्र और आकाश को छानमारा है, इनका कहीं निशान नहीं मिलता तो वे फिर निराकार ईश्वर को न दिखाई देने पर कैसे आक्षेप करते हैं।

फिर भी किसी वस्तु को देखने एवं जानने के लिए भिन्न भिन्न साधनों की आवश्यकता होती है। हर वस्तु इन भौतिक आंखों से दिखई नहीं देती। कोई वस्तु बहुत दूर हो तो वह दिखाई नहीं देती। कोई वस्तु इतनी निकट हो जैसे कि अपनी आंखों से डाला काजल भी हम नहीं देख सकते। आंखों में कोई विकार हो तो या बीच में कोई पर्दा हो, पर्याप्त प्रकाश न हो या हिलजुल रही वस्तु हो, तो भी हमारी आंखें ढकी जाने वाली वस्तु को नहीं देख सकती। इसके अतिरिक्त कहीं दुर्गन्ध हैं किसी पुष्प में सुगन्ध हैं। इसको जानने के लिए नासिका की आवश्यकता पडती है। मीठा, कडवा या खट्टा जानने के लिए जिह्वा ही एक साधन है। गरम ठण्डा देखने के लिए त्वचा ही काम आती है कोई कहे कि देखना अमुक व्यक्ति क्या कह रहा है। उस समय हमें यह आंखें नही कान ही काम देगें। जिस तरह उपरोक्त बातों में हमें यह आंखें काम नहीं देगीं। ठीक उसी प्रकार परमात्मा को देखने के लिए निष्पाप एवं पवित्र आत्मा ही एक साधन हैं। आत्मा पवित्र हो, इस के लिए योग साधना अत्यावश्यक है।

सो सच्चाई तो यह है कि परमात्मा निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर, सर्वत्र और सर्वव्यापक है। साकार और किसी एक स्थान पर निवास करने वाला कोई भी हो वह परमात्मा नहीं।

वेद ज्ञान

परम पिता दयालु परमात्मा ने प्राणियो के उपकार के लिए जहां अन्य पदार्थ दिए सृष्टि के आरम्भ में ही कोई एक अरब सतानबे करोड़ वर्षो में लगभग अपनी तरफ से सूत्र रुप में वेद ज्ञान दिया। यह ज्ञान चार वेदों ऋगवेद, यजुवेद, सामवेद और अथर्व वेद में वर्णित हैं। परमात्मा द्वारा प्रदत यह ज्ञान सम्पूर्ण है। इसमें कोई घटा बढी करने एवं कोई संशोधन किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं हैं। परमात्मा ने अपना ज्ञान एक बार दे दिया है। बार बार या समय समय पर कोई नया ज्ञान नही देता। न ही किसी पैगम्बर को अपना ज्ञान देने के लिए भेजता है। परमात्मा का यह ज्ञान आरम्भ में जैसा था वैसा आज भी है और सदा वही रहेगा। जो बात इसकी पहले कभी सत्य थी वैसे

ही सत्य और अनुकरणीय आज भी है और वैसे ही लाखों करोड़ों वर्षों तक रहेगी। वेद ज्ञान को पुराना हुआ मानने वाले सत्य नहीं एवं भटके और अज्ञानी ही कहे जाएंगें।

वेद सार्वभौमिक ज्ञान है। जाति, रंग, और स्थान भेद के बिना संसार भर के सभी स्त्री पुरुषों को वेदों के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का पूर्ण अधिकार है। यह ज्ञान संसार के हर कोने-कोने में सार्थक एव लागु मानकर चलने में ही प्राणी मात्र का भला है।

वेदों द्वारा बताया हुआ मार्ग ही अनुकरणीय है और वही हमारा धर्म है।

वेदों की आज्ञाओं के विरूद्ध आचरण या मान्यता ही नास्तिकवाद है और इन आज्ञाओं का उल्लंधन ही सब कष्टों का मुख्य कारण है।

वेदों के अनुसार सत्य धर्म वह है कि जिससे प्राणी मात्र का उपकार हो।

दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि हम चाहते हैं कि हमारे साथ हो। किसी के साथ जाति स्थान व रंग की बिना पर भेदभाव करना, घृणा करना या अनुचित व्यवहार करना घोर अपराध है। संसार के सभी प्राणी परम पिता परमात्मा की सन्तान है । दूसरे प्राणियों को किसी प्रकार का कष्ट देना परमात्मा के विरूद्ध विद्रोह है। बिना विशेष कारण किसी को पीड़ा देना अथवा किसी प्राणी की जिसमें मनुष्य पशु पक्षी इत्यदि सभी सम्मिलित है। हत्या करना अमानवीय एवं पाप कर्म हैं।

संसार के सकल पद्धार्थों का पूर्ण ज्ञान मूल रूप से वेदों में विद्यमान है। आजकल के विज्ञान की बातें भौतिकी व रसायन आदि की कोई ऐसी नहीं जो वेदों में न हो। जों बातें अभी तक मनुष्य नहीं जान पाया हैं। वह भी वेदों से जानी जा सकती हैं। केवल विद्वता पूर्ण खोज की आवश्यकता है।

वास्तविकता यह है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान वेदों में ही है। इसके बाद में जो भी ज्ञान देने की घोषणा किसी मनुष्य द्वारा परमात्मा द्वारा दिए ज्ञान की है, और जो चमत्कारिक बातें, किस्से, कहानियां दूसरे धर्म ग्रन्थों में दी है वे सब उनकी मनघडन्त घटनाएं हैं। वेदों में कोई इतिहास नहीं हैं। संयोगवश यदि ऐसे शब्द वेदों में है जिनसे किसी ऋषि- मुनि, देवी-देवता, राजा-महाराजा, या नेता का नाम बनता हो तो वह उस व्यक्ति का इतिहास या वर्णन नहीं। वे तो ठीक उसी प्रकार बाद में रखे नाम हें जैसे अब कोई राम, लक्ष्मण, शिव-शंकर, हरिश्चन्द्र, कृष्ण, सुभाष, लाल बहादुर इत्यादि नाम अपने बच्चों के रख लें।

हमारा कल्याण इसी में है कि वेदों द्वारा दर्शाय मार्ग पर चलें। महर्षि श्री स्वामी दयानन्द ने जो हमें उपदेश दिया है कि वेदों की ओर चलो वह पूर्णतया सार्थक है। संसार भर के लिए सुख-शान्ति एवं समृद्धि का इसके इतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं हैं।

नित्यता

परमात्मा, आत्मा और प्रकृति ये तीनों अनादि और अनन्त हैं। ये तीनों ही नित्य है। प्रकृति के सभी जड़ पदार्थ अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी तथा आकाश सम्मिलित हैं। परमात्मा सृष्टि की रचना करता हैं। जीव, आत्मा और प्रकृति के संयोग से मनुष्यों एवं पशु पक्षियों तथा अन्य प्रतिमाओं की रचना परमात्मा द्वारा की जाती है। जो भी रचा गया है समय आने पर वह छिन्न भिन्न भी होगा जिसने जन्म लिया है और जिसका संयोग हुआ है उनकी मृत्यु एवं वियोग अवश्य होता है। यह अटल सत्य है। कोई अपने आप को कितना ही बलवान, गुणवान, विद्वान व धनवान क्यों न समझता हो। उसकी भी मृत्यु अवश्य है। पदार्थो का रूप बदल सकता है परन्तु विनाश नहीं होता और रूप बदलते समय जो पदार्थ जिस समूह से सम्बन्धित होता है उसी में जा मिलता है।

परमात्मा और जीव आत्मा दोनों चेतन है। प्रकृति जड़ है। परमात्मा सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है। परमात्मा निराकार है। उसके हाथ पांव आदि कोई अंग नहीं है। वह अपनी शक्ति द्वारा अपने विधान अनुसार सब कुछ कर सकता है। उसमें किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं। परमात्मा ने सारे ब्रह्माण्ड की सभी प्राणियों की एवं अन्य सृष्टि की रचना की है। सूर्य, चांद, तारे, सितारे सभी नक्षत्र आदि उसी के रचे हुए हैं। वहीं उन का संचालक है। परमात्मा के विषय में इससे पूर्व पक्तियों में काफी कुछ बताने का प्रयास किया है। अब मनुष्य योनि एवं पशु पक्षियों की योनि के बारे कुछ बातें जैसा कि हम मानतें हैं, बताई जाएंगी।

योनियां

योनि दो प्रकार की होती है। १. भोग योनि २. उभय योनि
उभय योनि में आती हैं। कर्म योनि एवं भोग योनि।

भोग योनि में सभी जीव जन्तु, पशु, पक्षी, जलचर थलचर और नभचर आते हैं। जबकि उभय योनि सब मनुष्य मात्र स्त्री और पुरूष ही आते है। जो जीव आत्मा भोग योनि में आता है वह अपने पिछले जन्मों में किए हुए कर्मो का ही फल भोगता है। कोई नया कर्म करने का उसका सामर्थ्य नहीं हैं। भोग योनि वाले सामाजिक प्राणी नहीं होते। एक दूसरे के सुख दुख में सम्मिलित नहीं हो सकते। किसी प्रकार की विवेचन शक्ति उनमें नहीं होती। वे तो केवल अपना भोग, भोग कर ही इस संसार से विदा लेते हैं। वे कोई नया कर्म करके अपने अभागी जीवन को सुधार सकने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार जब सभी पूर्व जन्मों के कर्मो के फल वे भोग लेते हैं तब उनको मानव चोला

मिलता है।

मनुष्य योनि कर्म एवं भोग योनि भी हैं।

इस योनि में मनुष्य जहां पूर्व किए हुए कर्मो का फल भोगता है वहां नए कर्म भी करता है। जो आत्माएं मनुष्य का चोला प्राप्त करती हैं। वे भाग्य शाली होते हैं। जीव जन्तु की योनियों में धर्म कर्म का कोई ध्यान नहीं होता। विवेक और चिन्तन शक्ति नहीं होती। अपने आगामी जीवन को बनाने का सामर्थ्य नहीं होता। मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जिसमें जीव में विवेक, चिन्तन शक्ति और भले बुरे की पहचान होती है। दुर्भाग्यशाली हैं वे लोग जो मानव चोला पाकर भी इसका लाभ नही उठा सकते ओर अपने जीवन को विषयों में पड़कर व्यर्थ में गवां देते हैं और फिर भोग योनियों के चक्कर में पड़ जाते हैं।

मनुष्य योनि में आई आत्मा कर्म कर सकने में स्वतंत्र होती है। किन्तु उन के किए हुए कर्मो का फल भोगने में परमात्मा के आधीन है। मनुष्य योनि कर्म योनि के साथ साथ भोग योनि भी है। इसमें भी पूर्वजन्मो के फलों को भोगना भी पड़ता है। खाने पीने की वस्तुओं के भण्डार के साथसाथ नौकर चाकर सेवा के लिए तैयार खडे मिलते हैं और दूसरी तरफ जो दूसरा बच्चा उत्पन्न हुआ उसे नौकर चाकर तो क्या पीने के लिए दो घूंट दूध भी उपलब्ध नही होता। बड़ी ही दीन हीन अवस्था में वह उत्पन्न होता है। इस के साथ हम यह भी देखते हैं कि एक बच्चा तो पूर्वावस्था स्वस्थ एवं हृष्ट पुष्ट उत्पन्न होता है जबकि दूसरा रोगग्रस्त, अपाहिज और दुबला-पतला होता है। कोई जन्म से ही मर जाता है और कोई सब आयु भोगता है। तात्पर्य यह है कि जन्म से ही बहुत विषमताएं होती हैं।परमात्मा कर्मो का फल देता है। ऐसा मान भी लें तो जन्म लेते बच्चों ने कोन से कर्म कर लिए कि उनमें विषमताएं उत्पन्न हो गई। न जाने उसने कितने जन्म ग्रहण किए हैं और कौन कौन से अच्छे व बुरे कर्म उन जन्मों में किए हैं। इस प्रकार परमात्मा पर भेदभाव करने का दोष नहीं आता। उसने तो किए हुए कर्मो का फल देना ही होता है। अच्छे कर्मो का अच्छा और बुरे कर्मो का बुरा। मनुष्य योनि का विशेष लाभ यह है कि शुभ कर्म करके मनुष्य अपने भविष्य को बना सकता है और यदि प्रयत्न करें तो जीवन मरन के बंधन से भी छुटकारा प्राप्त कर सकता है। मुक्त जीव योनियों के चककर से करोड़ों वर्षो तक बचा रह सकता है।

ऐसी परिस्थितियों में मानव चोला पाकर यही उचित है कि सदैव शुभ कर्म किए जाएं। परम पिता परमात्मा की भक्ति में अपने मन को लगाएं। जो हमारे पाने की इच्छा है, वह परमात्मा से मांगे। तदानुसार सतत् और संभव आचरण भी करें। खाना-पीना, सोना, सन्तान उत्पन्न करना तो पशुओं की योनि में भी होता है। यदि इसी प्रकार अपने जीवन को व्यतीत करना है तो मनुष्य योनि का फिर लाभ ही क्या ?

अवतारवाद

पूर्व पंक्तियों में यह बताया गया है कि परमात्मा सर्वत्र और सर्वव्यापक है। बहुत से लोग उसे बुलाने की बातें करते हैं। वे समझते है कि परमात्मा उनके पास नहीं हैं और पुकारते हैं, हे प्रभु, आओ और हमारे दुखों से हमें छुटकारा दिलाओ। उनके विचारानुसार जो भी भगवान को पुकारता हैं, भगवान चलकर वहां आ जाते हैं। यह बात बडी हास्यप्रद लगती हैं। देखिए जो पहले से ही वहां मौजूद हों, उसका बुलाना और आना क्या? मैं सत्य पाल से बात करना चाहता हूं। सत्यपाल अपने घर पर है तो मैं उसके घर के द्वार पर जाकर उसे आवाज दूगां तो वह अन्दर से बाहर आ जाएगा और यदि वह पहले से ही घर के द्वार पर खड़ा हो तो हमें पुकारने की आवश्यकता नहीं। बात तुरन्त कह सकते हैं। यही बात ईश्वर के विषय में भी सोचनी चाहिए। ईश्वर जब सब जगह मौजूद है तो वह आएगा कहां से? वह तो पहले ही पुकारने वालों के पास मौजूद हैं। यही बात अवतारवाद पर भी लागु होती है। जैसा कि पहले बताया गया है कि परमात्मा न तो जन्म लेता है न मरता है। जो प्राणी जन्म लेता है उसी की मृत्यु निश्चित है। यह बात पूर्व पंक्तियों में बताई जा चुकी हैं। यदि परमात्मा अवतार धारण करे अर्थात किसी भी शरीर में आवे तो मनुष्य और परमात्मा में अन्तर ही क्या रह गया। परमात्मा जन्म मरण के चक्कर में नही पड़ता। परमात्मा ने जो करना होता है वह स्वयं बिना कोई रूप धारे कर सकता है। बहुत से लोग समझते और कहते हैं कि दुष्टों को दण्ड देने के लिए भगवान जन्म लेते हैं। यह उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि परमात्मा इतना शक्तिमान है कि एक दो मनुष्यों को तो क्या हजारों लाखों प्राणियों को क्षण भर में मोत के घाट उतार सकता है। हजारों कंस और रावण मिलकर भी ईश्वर की शक्ति के समक्ष शून्य हैं। फिर यदि एक कंस या रावण को मारने के लिए परमात्मा जन्म धारण करे और जन्म मरण के चक्कर में आकर सैंकड़ों कष्ट भोगे तो यह कोई जंचने वाली बात नहीं। रावण को मारना होता तो वह उसे किसी भी असाध्य या हृदय रोग से पीडित कर क्षण भर में मार सकता था। उसे राम के रूप में आने की क्या आवश्यकता थी। जैसा सर्वविदित है कि राम भी रावण को बिना ओरों (विशेषता विभिषण) की सहायता लिए बिना नहीं मार सकता था। वह सर्वशक्ति मान भगवान ही क्या जिसे दूसरों की सहायता लेनी पडे। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा ने राम का अवतार नहीं लिया यही बात दूसरे अवतरों के विषय में समझ लेनी चाहिए कि परमात्मा ने कभी भी कोई रूप धारण कर अवतार नहीं लिया और न लेता है।

बहुत से लोग यह भी कहतें है कि परमात्मा अवतार तो लेता है परंतु बहुत सी लीला मनुष्यों वाली करता है। केवल लोगों के दिखावे के लिए। कितनी अजीब बात

लोग कहते हैं। परमात्मा को एक मदारी या मसखरा उन्होनें समझ लिया। वह नित्य और पवित्र न रह कर बहुरूपियों सा आचरण करने वाला हो गया।

भगवान को अपनी माया और लीला दिखाने के लिए किन्हीं परपंचोंकी आवश्यकता नहीं। न वह कोई दिखावा रूपी जाल में पड़ता है। उसकी माया तो सम्पूर्ण ब्रहाण्ड में पत्ते पत्ते में दृष्टि गोचर हो रही हैं। सभी जंगल, पर्वत, नदियों, सूरज, चॉद सितारे उसी की लीला को दर्शाते रहे हैं। संसार में जितनी भी घटना घटती हैं सब उसी की माया है।

अब तक परमात्मा के चौबीस अवतार हुए, कहे जाते हैं। इनमें से राम व कृष्ण मुख्य माने जाते हैं। ये दोनों ही महानतम गुणों वाले महान पुरूष थे। उन्होंने आततांईयों, दुष्टों तथा भ्रष्टा आचारियों को समाप्त करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और उसमें वे बडी मात्रा में सफल भी हुए। यदि उन्हें कहें कि वे तो परमात्मा के अवतार थे इसीलिए वे अपना नाम कर सके तो इसमें उनकी महता क्या रह गई। बल्कि इस में तो परमात्मा की भी कोई बडाई न रही क्योंकि बहुत बडा कार्य करने वाला अगर कोई छोटा कार्य करें तो उसमें उसकी कोई प्रशंसनीय बात नहीं हैं।

आर्य समाजी राम व कृष्ण को मानते नही, ऐसा बहुत से लोग आक्षेप करतें हैं। परन्तु यदि यही आक्षेप उन्हीं लोगों पर किया जाए तो अधिक तर्क संगत होगा क्योंकि ऐसे लोग राम व कृष्ण की आज्ञाओं को मानने एवं उनके चरित्र का अनुकरण करने की अपेक्षा उनके चित्रों की पूजा में लीन रहतें हैं या राम राम कृष्ण-कृष्ण को रटने में ही बडी भारी बात मानते हैं।

आर्य समाजी राम को और कृष्ण को कैसा मानतें हैं। यह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाएगा।

श्री राम चन्द्र जी-ये त्रेता युग में रघुकुल के महाराजा दशरथ के घर अयोध्या में उत्पन्न हुए थे। ये एक महान पुरूष थे। इन्होनें अपने कुल की परम्परा अनुसार मर्यादा का पूरा पालन किया और मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाए। इन्होंने ऋषियों, मुनियों और अपनी प्रजा की हर प्रकार से पूरी रक्षा की। पापियों, आततांईयों और दुष्टों को दण्ड़ दिया। वे अति न्यायप्रिय थे। उनको किसी प्रकार का राग द्वेष छू तक नहीं गया था। पिता की आज्ञा हुई तो राजतिलक को छोड़कर वन में जाना सहर्ष स्वीकार किया। जब राजा बने तो राज काज को उस ढ़ंग से चलाया कि अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को त्याग कर प्रजा के लिए सर्वस्व होमकर दिया। तमाम प्रजा इनके राज्य काल में अति प्रसन्न थी।

ये पूर्णतया लोंकतंत्रवादी थे। प्रजा की छोटी से छोटी आवाज को भी बहुत महत्व

देते थे। ये इस सीमा तक भी गए कि एक धोबी के व्यंग को भी प्रजा की प्रतिध्वनि समझते हुए अपनी धर्म परायण अति पवित्र धर्म पत्नी महारानी सीता को वन भेज दिया। यही कारण है कि नो लाख वर्ष बीत जाने पर भी राम राज्य की प्रशंसा की जाती है और सभी चाहते हैं कि देश में राम राज्य सा आदर्शराज्य हो। ऐसे श्रेष्ठोंके संरक्षक दुष्टों को प्रताडन करने वाले, धर्म स्थापक महान मर्यादा पुरूषोतम के जीवन से शिक्षा ग्रहण कर उनके मार्ग का अनुसरण करें न कि केवल राम राम उच्चारण कर तोते की तरह उसे रटते रहे।

रामायण-श्री राम चन्द्र जी महाराज की जीवन घटनाओं का वृतान्त जिस ग्रन्थ में मिलता है उसका नाम रामायण है। रामायण एक ऐसा महान ग्रन्थ है जिसमें अनेकों शिक्षाएं भरी पडी हैं। एक से अधिक विवाह की हानियां, माता पिता की आज्ञा का पालन, राम और भरत सा भाइयों का प्यार, लक्ष्मण सी संयमशीलता, नारियों का पतिव्रत धर्म, हनुमान सी स्वामी भक्ति,एक दूसरे के अधिकार का सम्मान जैसी अनेकों रचनात्मक शिक्षाएं इसमें हमें मिलती हैं। इने साथ साथ रावण व विभीषण जैसे भाइयों का वैर का जिसने लंका और लंकेश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, उदाहरण भी हमें रामायण से मिलता है। आज तक भी जहां राम और उनके सहयोंगियों व साथियों के नाम पर लोग अपने बच्चों के नाम रखने में गौरव अनुभव करते हैं। वहां राम का अनन्य भक्त, एवं सहयोगी होते हुए भी केवल अपने भाई के साथ शत्रुता होने के कारण कोई अपने बच्चों का नाम विभीषण नहीं रखता। हमें चाहिए की रामायण की शिक्षाओं को अपने जीवन में धारण करें। केवल रामायण का पाठ कर लेने से या इसके श्लोक पढ़ लेने या राम की मूर्ति की पूजा कर लेने और हनुमान जी के चरित्र का केवल गुणगान मात्र ही कर लेने से ईश्वर की भक्ति नहीं होती और न ही जीवन को कोई लाभ मिलता है।

श्री कृष्ण जी-लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व द्वापर युग में महाराज श्री कृष्ण जी का जन्म मथुरा नगरी में हुआ। वे एक महान योगी राज, शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, नीतिज्ञ, शूरवीर, संयमी, उदारचित, मित्रों के मित्र और धर्म के महान निष्ठावान थे। जहां उन्होनें कंस और जरासन्धं, शिशुपाल जैसे दुराचारियों का वध किया वहीं दुर्योधन, दुशासन और उनके अनेकों साथियों सहयोगियों को समाप्त करने में पाण्डवों का पूरा सहयोग दिया। इन्हें भी लोग भगवान का अवतार कह कर उनकी महता को कम करते हैं। श्री कृष्ण पर अनेकों दोष लगाते हुए वे नहीं हिचकते अपितु बड़ाई समझतें हैं। उन पर ग्वाल बालाओं जैसे राधा, ललिता और इनकी सहेलियों के संग रास रचाने, होली खेलने, मक्खन चोरी करने और कामुक दृष्टि से उन्हें देखने के न जाने कितने दोष लगातें हैं। वास्तव

में श्री कृष्ण जी महाराज योग के सभी अंगों में पारंगत महान संयमी ब्रहाचारी मातृशक्ति के मान मर्यादा के महान रक्षक पुजारी एवं हितैषी थे। उन पर अनेकों विवाह करने का भी मिथ्या दोष लगाया जाता है। श्री कृष्ण जी ने केवल एक ही विवाह किया। वह विवाह भी रूक्मणी देवी से उसकी पूर्व अनुमति से रचाया। श्री कृष्ण जी ने पूर्ण संयमी रहते हुए जीवन भर में एक ही पुत्र उत्पन्न किया जो कि उन्हीं की तरह बलवान, गुणवान एवं विद्वान हुआ। कृष्ण ज़ी ने अपने गुणों के कारण सब के पूज्य माने जाते थे। भीष्म पितामह जैसे पुरूष भी उनको धर्म के विषयों में सर्वोपरि मानते थे।

गोपाल कृष्ण- श्री कृष्ण जी महाराज गौओं से बहुत प्यार करते थे। गौ का दूध दही, मक्खन और घी का खाना ही उन्हें अमृत समान था। गौ के दूध को वे बलवर्धक, बुद्धि का दाता एवं निरोग पेय समझते थे। गोमूत्र और गौ के गोबर की भी उतम औषधियों आंख, कान और त्वचा के रोगों के लिए निर्माण की जाती हैं। गौओं के प्रति अपनी निष्ठा व प्रेम के कारण ही श्री कृष्ण जी गोपाल कृष्ण कहलाए।

आज कल श्री कृष्ण जी के नाम पर जो दुष्कर्म जैसे रास रचना, नाच गाना करना, स्वांग भरना, रंगा रंग कार्यो का आयोजन, होली पर उनका नाम लेकर उड़दंग मचाना, महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार करना कृष्ण के तथाकथित भक्तों द्वारा किए जाते हैं, सब निन्दनीय कर्म है। श्री कृष्ण जी महान चरित्रवान पुरूष थे। उन्होनें कुरूक्षेत्र में हुए महाभारत युद्ध में अर्जुन को जो उपदेश दिया वह एक पूर्ण विद्धान, वेद शारूत्रों के ज्ञाता, योगेश्वर सच्चरित्रवान एवं नितिज्ञ पुरूष का कार्य है कोई रसिक एवं कामी व्यक्ति ऐसा उपदेश नहीं दे सकता। इसलिए श्री कृष्ण जी के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करें। वे महापुरूष थे। उन्हें अवतार कह कर उनकी महता को न घटाएं।

गीता-श्री कृष्ण जी महाराज ने कुरूक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन को और उसके माध्यम से समस्त संसार को कर्तव्य परायणता और मोह त्याग का जो उपदेश दिया वह गीता कहलाता है। गीता के द्वारा योग की विधि और परमात्मा की भक्ति का सही मार्ग दर्शाया। आत्मा अमर है इस बात को बहुत ही स्पष्ट रूप से संसार के सम्मुख रखा। उन्होंनें बताया कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतारकर नए वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराना चोला छोडकर नया चोला धारण कर लेता है। मनुष्यों के कर्म फल सिद्धांत को इस तरह से श्री कृष्ण जी ने गीता मे समझाया है कि इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश शेष नहीं रह जाती। गीता को सोच समझकर पढ़ने एवं तदानुकूल आचरण करने वाले मनुष्य को कभी भय मोह, आलस, प्रमाद, अन्धविश्वास,नास्तिकता, अकर्मण्यता आदि दोष छू तक नहीं सकते। हां जो लोग केवल गीता का पाठ कर लेने में ही सीमित रह जाते हैं और आचरण लेशमात्र भी नहीं करते उन्हें कोई लाभ होने वाला नहीं। इसी प्रकार

गीता को समझ लेने वाला व्यक्ति मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध व भूत प्रेत के पचडे में नहीं पडता।

गीता के विषय में एक बात और बडी ध्यान देने योग्य है वह यह है कि इसमें जो श्लोक पापियों को दण्ड देने और धर्मात्मा पुरूषों के संरक्षण बारे श्री कृष्ण जी के इस संसार में आने के लिए दिया गया है।वह श्री कृष्ण जी द्वारा कहा गया श्लोक नहीं है। किसी स्वार्थी एवं कर्तव्य विमुख व्यक्ति ने अपनी किसी बात को सिद्ध करने के लिए अपनी तरफ से गीता में जोड़ दिया है। श्री कृष्ण जी एक सत्य प्रिय पुरूष थे । उन्होनें कभी कोई ऐसी बात नहीं की जो नीति के विरूद्ध और मिथ्या हो। महर्षि श्री स्वामी दयानन्द ने कृष्ण जी को एक आत्म पुरूष की संज्ञा दी है। आत्म पुरूष कभी कोई मिथ्या आचरण नहीं करते।

हमारे सामने अनेकों घटनाएं हैं जिनसे इस श्लोक की असत्यता प्रमाणित होती है। राम और कृष्ण के समय इतना अत्याचार और पाप नहीं था जो कि बाद में आने वाले वर्षो में हुआ और जिसमें धर्म की बड़ी हानि हुई। आक्रमणकारियों द्वारा मंदिरों को तोडा जाना पुजारियों को मारना, माताओं बहनों का शील भंग करना, उन्हें दास बनाकर ले जाना यें बातें छह सात सौ वर्षो पूर्व इस देश में हुई। क्या यह धर्म की हानि नहीं थी। इसके बाद हलाकू चंगेजखां, औरंगजेब ने हिन्दुओं के उपर असीमित अत्याचार किए। अनेक मन्दिर तोडे। उन्हें उनकी इच्छा अनुसार पूजा पाठ करने की अनुमति नहीं दी। इसके अतिरक्त हिन्दुओं पर केवल इसीलिए कि वे अपनी मान्यताओं को छोडने के लिए एवं इस्लाम मत धारण करने के लिए राजी न हुए। उन पर कर लगाया गया। क्या यह धर्म की हानि न थी। इसके बाद भी अंग्रेजों के राज्य में राम कृष्ण के अनुयायियों को लाखों की संख्या में ईसाई व मुसलमान बनाया गया। जो न बनते उन पर अत्याचार किए गए। निर्दोषों की हत्या की गई । अग्रेजों के शासन काल में ही गोहत्या चरम सीमा तक पहुंच गई थी। जो आज तक भी चल रही है। जलियां वाले काण्ड जैसे कितने काण्ड हुए जिनमें लाखों स्त्री पुरूषों ओर बच्चों का वध कर दिया गया। क्या यह सब अत्याचार और पापाचार नहीं था। हैदराबाद के निजाम ने हिन्दुओं को पूजा पाठ करने, घण्टे घडियाल बजाने, सध्या हवन करने से मनाही कर दी। कितने ही संयासी महात्माओं, को जेल में डालकर इतने सितम किए कि कितनों की जेल में मृत्यु हो गई। क्या यह धर्म पर आंतकवाद न था। १९४६-४७ में भारत पाकिस्तान बनने के समय लाखों स्त्री-पुरूषों बूढे बच्चों को मारा गया, लूटा गया। उनकी सम्पति छीनी गई। महिलाओं के सुहाग लुट गए। अपहर्ण हुए उन्हें इतना अपमानित किया गया कि सीता और द्रोपदी के साथ जो हुआ उससे कई गुणा अधिक था। क्या यह सब राक्षसी कार्य नहीं थे। आजकल भी आंतकवाद एवं उग्रवाद का बोलबाला है। भ्रष्टाचार व दुराचार छल कपट और झूठ का कोई ठिकाना

नहीं, अपनी चरम सीमा को भी पार कर गए। माता पिता को संतान कुछ नहीं समझती। ऐसी परिस्थितियों में कोई अवतार क्यों नहीं हुआ? इससे स्पष्ट होता है कि गीता में आया यह श्लोक श्री कृष्ण जी का नहीं है।

क्या ही अच्छा होता कि हम महाराज श्री कृष्ण के गीता में दिए आदेश को अपने जीवन में धारण कर लेते। इस प्रकार मृत्यु के भय, मोह,आलस, प्रमाद, अकर्मव्यता से छूट कर कर्तव्य परायण बनते। इस प्रकार सब प्रकार की आपदाएं जो हम पर ढाई गई इनका सामना करते और इनका दमन करते। यदि इस पथ पर चलते हुए हमें प्राणों से भी हाथ धोने पड़ते तो नए वस्त्रों के सामान नया चोला मिल जाने की आज्ञा से हम कभी मृत्यु से न घबराते। गीता जो हमें अभय दान देकर कर्तव्य परायण बनाती का पाठ करना ही पर्याप्त समझ लिया। आचरण करना नहीं सीखा। सीखी बात यही कि जब अधर्म बढेगा, भगवान आएंगें और बेड़ा पार करेगें। हां आलस और अंधविश्वास। इस वृति ने ही हमें दूसरों का गुलाम बनाया, हम मरें, मिटे, उजडे। कितना हमारा भला होगा कि हम अब गीता में दिए उपदेशों पर सोच समझकर आचरण करें।

उपरोक्त सब बातों से स्पष्ट है कि परमात्मा कभी अवतार धारण नही करते और राम कृष्ण भी परमात्मा का अवतार नहीं थे। परमात्मा के बदले राम और कृष्ण का नाम तोते की तरह रटना उनके उपदेशों से विमुख होना है। उनकी शिक्षाओं, उपदेशों एवं उनके चरित्र को जीवन में धारणा ही श्रेयस्कर है।

प्रकृति

इसके अंतर्गत सभी जड पद्वार्थ आ जातें हैं। जो कि अपने आप बिना हिलाए डुलाए कुछ भी नहीं कर सकते। बहुत से लोगों की धारणा यह है कि सृष्टि स्वत: ही बिना किसी के बनाए बन गई और बनती चली जा रही है। लेकिन यह बात तर्क संगत नहीं क्योकि आज तक किसी ने नहीं देखा कि बिना पकाएं रोटियां पक गई हों और बिना थाली में डाले साग सब्जी इत्यादि हमारी थाली में डल गई हों। किसी ने कभी नहीं देखा कि लकड़ी अपने आप साफ हो गई हो और अपने आप ही मेज, कुर्सियों में बदल गई हों। एक छोटे से पत्थर के टुकड़े को ही कहीं रख दो वह जैसा है वैसा ही उसी स्थान पर पड़ा रहेगा। जिस प्रकार रोटियां,फर्नीचर और मकान इत्यादि बनाने के लिए कारीगरो की जरूरत होती है और वे ही वस्तुएं बनाते हैं। इसी प्रकार इतनी सुन्दर सृष्टि, नदी-नाले, पर्वत, जंगल, सूरज, चांद, तारे-सितारे, नक्षत्र इत्यादि बनाने के लिए और सारे सौर मण्डल को नियमित रखने के लिए एक महान कारीगर एवं संचालक की आवश्यकता है और वह है परम पिता परमात्मा।

मूर्ति पूजा

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हमारे देश में ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना को छोड कर मूर्तिपूजा ने अपना स्थान बना लिया। यह सब वेद शास्त्रों की शिक्षा को भूल जाने के कारण ही हुआ। परन्तु इसका बड़ा भारी दुष्प्रभाव हुआ और अनेकों कुरीतियां और बुराइयां इसके कारण उत्पन्न को गई। जिस प्रकार कहीं पर पड़ा एक पत्थर का टुकडा बिना हिलाए डुलाए हिलजुल नहीं सकता उसी प्रकार मंदिर में स्थपित मूर्तियां भी कुछ न कर सकने का कारण तथा बोलना खाना, देखना, सुनना न कर सकने के कारण जड़ ही हैं। कहने को तो मन्दिर में मूर्ति स्थापित करते समय उसकी प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। पर क्या उसमें प्राण आ जाते हैं। भगवान द्वारा जब तक आत्मा के साथ किसी जड़ शरीर का संयोग नहीं किया जाता उसमें प्राण नहीं आ सकते। मनुष्यों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा कर पाना पूर्णतया असम्भव है और ऐसा सोचना भी अपने आप को धोखे में रखना है। मन्दिर में पडी मूर्तियों के साथ पुजारी जैसा चाहे व्यवहार कर सकता है। उनमें किसी प्रकार की शिकायत तक करने का सामर्थ्य नहीं है। यही कारण है कि मूर्तियों पर चढा हुआ प्रसाद, फल मिठाइयां इत्यादि मूर्तियों के पेट में न जाकर पुजारी जी के घर पहुंच जाता हैं। मूर्तियों पर सजाए हुए जेवरों, आभूषणों को चोर ले जाते हैं महमूद गजनवी ने सोमनाथ की मूर्तियों को तोडकर करोडों अरबों रूपयों के हीरे जवाहरात लूट लिए। कभी किसी मूर्ति ने किसी चोर को नहीं पकडा। न ही महमूद गजनवी को रोका, न उसे कुछ दण्ड दिया। सो किसी प्रकार की जड पूजा करना धर्म और भक्ति के विमुख है, और आत्म वंचना है।

लोगों ने अपनी अज्ञानता के कारण राम कृष्ण के चरित्र का अनुसरण करने की बजाए उनके चित्र बनाकर या मूर्तियां स्थापित कर उनकी पूजा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार और सेंकडों कपोल कल्पित देवी देवताओं की मूर्तियों पर भेंट चढ़ाना, धूप दीप इत्यादि से पूजा अर्चना आरम्भ कर दी। इसी को वे प्रभु भक्ति मानने लगे। राह से भटक गए। प्रभु की भक्ति समाप्त होने से अनेकों कष्टों में पड़ गए। यह निश्चित है कि मूर्तिपूजा ईश्वर भक्ति नहीं और न ही किसी शास्त्र में मूर्तिपूजा को ईश्वर भक्ति कहा है।

इसके अतिरिक्त बहुत से स्वार्थी व्यक्तियों ने अपने स्वार्थवश एवं अपनी आजीविका कमाने हेतुकई पहाड़ों स्थानों या कपोल कल्पित गाथाओं के आधार पर तथाकथित देवियों के मन्दिर खड़े कर दिए जहां आंख के अन्धे और गांठ के पूरे विचार एवं तर्क शक्ति से शून्य लोग वहां पहुंचते हैं। कई प्रकार की भेंट पूजा कर उनसे वर मांगते है, मिन्नतें मांगते है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति इनकी पूजा से संभव समझते हैं। परन्तु यह सब एक छलावा (धोखा)है। क्योकि जो मूर्तियां स्वयं भेंट और चढ़ावा (उनके भक्तों एवं पुजारियों

के अनुसार) मांगती हैं, वे किसी को क्या दे सकती हैं। और जो दे सकती होती तो उनके पुजारियों को क्यों लोगों को भ्रम में डालककर उनसे धन एंठने की दुहाई दी जाती है। रही मुरादें पूरी होने की बात तो यह भी एक छलावा है। सैंकडों हजारों लोगों में से कुछ एक की इच्छाएं उन्ही के अपने किए जाने वाले प्रयत्नों से पूरी हो गई तो उनके मस्तिष्क में यह बात डालने का प्रयत्न किया जाता है कि यह सब देवी की कृपा है। इसके विपरीत यदि किसी की बात नहीं बनती तो कहा जाता है कि तुम्हारी तो किस्मत ही ऐसी थी। इसमें देवी का कोई दोष नहीं। काम बन गया तो देवी ने बनाया यदि नहीं बना तो तुम्हारी किस्मत। अजीब बात है। जब किसी बात का श्रेय देते हैं तो अपश्रेय भी उन्हें मिलना चाहिए। वास्तव में यह देवी पूजा आजकल के कुछ ढ़ोगी एवं माया पुजारी व्यक्तियों की चलाई हुई है। कुछ सौ वर्ष पूर्व इसका कोई नामों निशान न था। माता के जागरण का जगराता की प्रथा तो इसी वर्तमान युग की देन है। वास्तविकता यह है कि सिनेमा वालों ने ही इन देवियो का प्रचार प्रसार अपने स्वार्थ और धन एंठने की लालसा पूर्ति के लिए ही किया है। वे लोग अपनी फिल्मों में इस ढंग के दृश्य बना कर दिखाते हैं कि किसी का मृत बेटा जीवित हो गया है या कोई बिछुडा प्रियजन मिल गया और इनको सत्य मानकर लोगों में इन देवियों की भक्ति की प्रवृति प्रबल होती गई वैसे यह मृगतृष्णा है और बीहड़ वन में भटकने वाली बात है ईश्वर भक्ति नहीं।

मूर्तिपूजा की हानियां-जैसा की ऊपर बताया गया है कि मूर्ति जड़ होती है चेतन नहीं। सो परमात्मा के बदले मूर्ति की पूजा आराधना एवं उपासना प्रभु भक्ति नहीं। इसी को ईश्वर समझना अपने आप को धोखे में रखना, आत्म वंचना है। मूर्ति पूजा से नास्तिकता को बढ़ावा मिलता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता और उसका सर्वत्र होने की बात समाप्त हो कर उसके एक देशीय होने की प्रवृति बढती है। पाप कर्म बढते हैं। अरे हमें कौन देखता है इसलिए यह कार्य कर देंगे तो हमारा कुछ भी बिगाड नहीं होगा। ऐसे भाव पनपते हैं। चोरी, ठगी, छूआछूत, भ्रष्टाचार, उंच-नीच के भेदभाव, वातावरण में प्रदूषण, यज्ञ आदि शुभ कर्मो को छोडना इत्यादि कितने ही दुष्कर्म है जो सब मूर्ति पूजा की देन हैं। आलस्य, प्रमाद कायरता पर आश्रिता सब मूर्ति पूजा के कारण से हैं। मूर्तियों के भक्त मूर्तियों के भरोसे बैठे रहते हैं। और अन्ततः धन, मन, व धर्म की हानि उन्हें उठानी पड़ती है। देश की दासता का प्रमुख कारण भी मूर्ति पूजा है।

प्रश्न किया जाता है कि जब परमात्मा सर्वव्यापक है और वह मूर्तियों में भी है तो मूर्ति पूजा परमात्मा की पूजा कैसे नहीं हुई। इसका सीधा सा समाधान यह है कि परमात्मा तो हर वस्तु में व्यापक है। केवल मूर्ति की ही नहीं हर वस्तु की पूजा करेगें। इसके अतिरिक्त भगवान के मूर्ति में होने से मूर्ति मूर्ति ही रहती है भगवान नही बन जाती।

वर याचना किससे:- मनुष्य जीवन में अनेकों आवश्यकता पूर्ति चाहिए। धन, ऐश्वर्य, घर, स्त्री, पुत्र स्वास्थ्य अर्थात् सुखी जीवन सभी मनुष्यों की कामना है। ये सब प्राप्त हो सकता है श्रम करने से तदानुसार कर्म करने से। परन्तु हर कोई यही चाहता है कि हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाए तो अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए याचना करने की प्रवृति बढ़ती जा रही है। मनुष्य के साधन सीमित हैं और भगवान की शक्ति असीमित। परम पिता परमात्मा के सभी भण्डार परिपूर्ण हैं। वह सब को सब कुछ देता है परन्तु कोई भेंट वह नहीं मांगता। परन्तु कितनी हास्यप्रद बात है कि लोग भगवान की बजाए इन देवी देवताओं से जो जड़ मूर्तियां है और जो इनके द्वारा ही निर्मित है उन्हीं से अपनी इच्छापूर्ति की आशा करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि बनाने वाला बनने वाले से सदा ही बड़ा होता है। सो इन मूर्तियों से तो इनके बनाने वाले कारीगर और शिल्पी ही बडे हुए। बडा छोटे से मांगे अजीब बात नहीं तो क्या है? दूसरी बात यह है कि मांगा उससे जाना चाहिए जिसके पास वह इच्छित वस्तु हो और वह देने की क्षमता रखता हो और देने के लिए रजामन्द भी हो। मूर्तियां तो स्वयं भेंट मांगती हैं वे देगीं क्या? और कहां से? सो जो हमारी इच्छा है वह परम पिता परमात्मा से प्राप्त करें। धन, बल, बुद्धि, ज्ञान सब का वही दाता है। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए परमात्मा की भक्ति आराधना उपासना के साथ-साथ उसी दिशा में तदानुसार सच्चे हृदय से आचरण करें।

एक प्रश्न यह भी किया जाता है कि जब आप मूर्ति पूजा का निषेध करते हैं तो आप अपने घरों में एवं मन्दिरों में भिन्न- भिन्न व्यक्तियों के चित्र जिनमें स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द के चित्र भी शामिल हैं क्यो लगाते हो? क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है? इसका स्पष्टीकरण बहुत ही सहज है।

यहां पुरूषों के चित्रों से प्रेरणा लेने के लिए लगाए जाते है। बड़े-बड़ें महापुरूषों के चित्र घरों में लगाना चाहे वे राम, कृष्ण, स्वामी दयानन्द, शिवा, प्रताप बहुत अच्छी बातें हैं, इसमें कोई बुराई नहीं । महापुरूषों, वीरों और ऋषियों-मुनियों के चित्र देखकर हमें प्रेरणा मिलती है किइन्होंने महान कार्य किए तो सब इसका आदर सम्मान करते हैं। हमें अपने बच्चों को भी ये चित्र दिखाकर न महपुरूषों के जीवन से अवगत कराना चाहिए और उनके पदचिन्हों पर चलके उनके चरित्र का अनुसरण करने की शिक्षा देनी चाहिए।

पूजा का अर्थ

जो वस्तु जिस योग्य हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना यह एक सीधा सादा सा अर्थ पूजा का है। पुष्प आदि समर्पण करना, हाथ जोडना और सिर झुकाना किसी की पूजा नहीं हैं। मूर्तियों और चित्रों को यथास्थान पर सजाना, दीवारों पर टांगना ही

उनकी पूजा है। धूप दीप आदि दिखाना, तिलक लगाना व भोग कराना नहीं क्योंकि वे न देख सकती हैं और न सूंघ सकती है। अनुभव नहीं कर सकती, खा-पी नहीं सकती आदि उन मूर्तियों की पूजा में शामिल नहीं हैं।इसके विपरीत कोई भूखा है उसे रोटी खिलाना माता -पिता व अन्य पूर्वजों की सेवा करना, रोगियों को औषधि आदि देना ही उनकी पूजा है। मुझे भूख लगी है तो मैं कहता हूं कि मैं पेट पूजा कर लूं। इसका तात्पर्य भोज़न खा लेने से है। कोई दुष्ट चरित्रहीन, गुण्डा शरारत करता हो ओर कोई यह कहे कि इसकी पीठ पूजा कर दो तो इसका अर्थ है कि उसकी पीठ पर जूतों की मार। इससे सिद्ध हुआ कि यथायोग्य व्यवहार करना ही पूजा के अर्थ में आता है। यहां पुनः यह कह देना असंगत नहीं होगा कि भगवान की कोई मूर्ति नहीं हो सकती और न ही किसी मूर्तिकी पूजा भगवान की पूजा होती है।

'विश्वास और भावना'

बहुत से लोग यह मानते हैं कि किसी वस्तु में यदि विश्वास कर लिया जाए तो उससे उसका वांछित फल प्राप्त हो जाता है। परंतु यह बात सर्वथा सत्य नहीं है। जो वस्तु जैसी है उस पर वैसा ही विश्वास करना चाहिए। अन्यथा यह अन्धविश्वास होगा। यदि चूने के पानी में यह विश्वास कर लें कि यह दही है और उसका मंथन करना आरम्भ कर दें तो चाहे कितना ही मंथन कर लें उससे मक्खन प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार हमें देहली से मुम्बई जाना हो तो हमें उसी राह पर चलना होगा जो मुम्बई पहुंचा सके। इसके विपरीत कलकते जाने वाले रास्ते पर यह विश्वास करके कि हम मुम्बई पहुंच जाएंगें चल पडे तो लाख विश्वास करने पर भी हम मुम्बई नहीं पहुंच सकेगें।

यही बात भावना के विषय में भी सत्य है कि भावना भी वास्तविक होनी चाहिए। कुभावना या दुर्भावना नहीं। भावना के साथ-साथ तदानुसार आचरण भी करना चाहिए। बिना आचरण की भावना, भावना नहीं कहलाती उससे कोई लाभ होने वाला नहीं। बहुत से कहतें हैं कि भगवान तो भावना के भूखे हैं। यह बात सत्य नहीं। भगवान किसी बात का भूखा नहीं। वह तो हमारी अपनी भावनानुसार हमारें किए कर्मो का फल देता है।

'श्रद्धा किसमें'

प्रभु में, सन्तमहात्माओं, विद्वानो, सत्यनिष्ठ व्यक्तियो, व चरित्रान पुरूषों में सदैव श्रद्धा होनी चाहिए। माता-पिता, गुरूजनों की सेवा पूरी तन्मयता के साथ करना उनकी हर आज्ञा को मानना, उनकी सुश्रुषा सेवा करना, उनके हर आराम का ध्यान रखना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा है। ढ़ोगी व्यक्तियों या केवल गेरूए कपडे पहनने वालों माला

इत्यादि धारण कर बगुले भक्त बनने वालों बहुरूपियों, नशेडियों और लम्बी चौड़ी, चिकनी चुपडी बातें करने वालों के चक्कर में फंस कर उनके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए।

'श्राद्ध'

जीवित माता-पिता, गुरूजनों की श्रद्धा से सेवा करना, उन्हें समय पर भोजन खिलाना, ऋतु के अनुसार वस्त्र देना, उन्हें हर प्रकार से सन्तुष्ट रखना, उनको प्रसन्न रखना ही वास्तविक श्राद्ध हैं। मृत व्यक्तियों का श्राद्ध सम्भव नहीं। जो जीव एक बार चोला छोड़ कर चला जाता है उसे वह पुराना चोला नहीं मिलता। उसे नया चोला मिलता है और वही बालकपन, यौवन और बुढ़ापे की क्रियाएं पूरी करनी होती हैं। फिर यह तो पता नहीं चल सकता कि इस जीव ने किस योनि का कौन सा शरीर धारण किया है। सो मृत व्यक्तियों का श्राद्ध नहीं करना चाहिए। हां हमारे पूर्वजों में जो गुण थे उनके गुणों को हम स्मरण करके अपने जीवन में धारण करें। उनके अनुकूल चलें तब तो लाभ है। यदि उनके बहाने से पकवान बनाकर उनको पहुचानें का प्रयत्न करें तो यह सब कुचेष्ठा है। और मृगतृष्णा से अधिक कुछ नहीं। बहुत से कहतें हैं कि इस बहाने से पुण्यदान हो जाता है। यह ठीक नहीं, क्योंकी जहां बहाना आ गया तो इसका स्पष्ट अर्थ झूठ हुआ और जहां झूठ है वहां पाप हैं।

'देवी देवता'

जो मनुष्यों और अन्य प्राणियों का हित करें वे ही वास्तव में देवी देवता हैं। देवी देवता जड़ भी हो सकते हैं और चेतन भी । हमारी माता, बहन, पुत्री वं धर्म पत्नी हमारे लिए देवियां हैं। पिता, गुरूजन, हमारे देवता हैं। ये चेतन देवी देवता हैं। सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि जो प्राणी मात्र को लाभ पहुंचाते हैं यह भी देवता हैं। ये जड़ देवता हैं। कोई मूर्तियां चाहे वो पुरूष की हो या स्त्री की देवी देवता नहीं हैं। इनको देवी देवता मानना इनकी पूजा अर्चना करना भोग लगाना इत्यादि कर्म करना अपने आप को ब्रह्मजाल में फंसाना है।

तीर्थ

तीर्थ उसे कहतें हैं जिससे व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो सके और जिससे दुष्कर्मों और पापों से मुक्त हो जाएं। गंगा यमुना इत्यादि के जल में स्नान करने से पाप नहीं कटते, न ही पुष्करराज, काशी, हरिद्वार, मथुरा, गया, मनसा, अमृतसर आदि की यात्रा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जल से शरीर की मैल तो कट सकती है, मन और

आत्मा की नहीं। शुभ कर्म सत्संग, ऋषियों-मुनियों की शिक्षा, स्वाध्याय ही वास्तविक तीर्थ हैं।

भक्ति क्यों करें

जब परमात्मा यथा कर्म फल देते हैं और हम कोई बुरा कर्म न करें, सदैव शुभ कर्म करते रहें तो हमें अच्छा ही फल मिलेगा और हमारा कल्याण होगा, फिर हमें परमात्मा की भक्ति की आवश्यकता क्यों? देखने में तो यह बात ठीक ही मालूम होती है परन्तु फिर भी हमें परमात्मा मे अपना ध्यान लगाना ही चाहिए। इसका कारण यह है कि जीव अल्पज्ञ हैं और मन अति चंचल शुभ कर्मों के कारण हमें धन सम्पदा और हर प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हो जातें हैं और इनके कारण अहंकार आदि दोष हमें घेर लेते हैं।

ईश्वर भक्ति में मन न लगाने वाले व्यक्ति अपने से अन्यों को हीन समझने लग जातें हैं। ऐसी गलत प्रवृति को रोकने के लिए और अहंकार अभिमान इत्यादि को दूर रखने के लिए एक प्रभावी साधन की आवश्यकता है। और वह सर्वश्रेष्ठ साधन परम पिता महानतम ऐश्वर्य परम परमात्मा की भक्ति ही है। यह विचार कर कि परमात्मा सर्वशक्तिमान, पूर्ण सर्व साधन सम्पन्न, सम्पूर्ण ऐश्वर्य का दाता एवं सकल ब्रहमाण्ड का निर्माता है। हम अपने को उसके अधीन समझेंगे और उसे सर्वोपरि समझेगें तो हमें अहंकार अभिमान आदि दोष छू तक न सकेगें इसके अतिरिक्त हम जो कुछ भी पातें है सब परमात्मा की ही देन है तो भी धन्यवाद रूप में हमें उसकी भक्ति करनी चाहिए। हमें सदैव शुभ कर्म करने की प्रेरणा मिलती रहे उस हेतु भी परमात्मा की भक्ति नितान्त आवश्यक है।

भक्ति की प्रकार

एकाग्रचित होकर प्रभु में ध्यान लगाना और उसके गुणों को अपने अन्दर डालना ही प्रभु की भक्ति है। चित की एकाग्रता योग साधना से ही सम्भव है। श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता में बताया है कि नासिका के अग्र भाग पर ध्यान केन्द्रित करने से चित की एकाग्रता में सहायता मिलती है। नासिका के अग्रभाग के पश्चात अन्तर्मुखी हो जाने से ही चित की एकाग्रता हो सकती है । साकार मूर्तियों पर ध्यान देने से व उनकी पूजा अर्चना से मन एकाग्र नही हो सकता । आंख, वाणी ओर कान के रस से प्रभु भक्ति नही हो सकती। ढोल, बाजे, चिमटे और खडताल आदि बजाकर कीर्तन करना, राम राम, हरे हरे राधेश्याम, और जय माता दी आदि कह कर और जोरजोर से चिल्लाकर या तोते की तरह रटकर ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती। कपोल कल्पित देवी देवताओं

के परिधान मुकुट, कर्ण-कुण्डल या उनके रंग रूप का गुणगान करना, उनके सौंदर्य की प्रशंसा करना प्रभु भक्ति में शामिल नहीं है। ये गुण तो दरजी व स्वर्णकार किसी को भी दे सकते हैं। प्रभु सत् चित, आनन्द स्वरूप, निर्विकार, न्यायकारी, दयालु, अनुपम, सर्वाधार, अभय, नित्य, पवित्र आदि गुणों से युक्त है। प्रभु के गुणों को धारण करना ही उसकी भक्ति है। रात्रि जागरण कर कीर्तन करना एवं बाहृय आडम्बर और ढ़ोंग के अतिरिक्त कुछ नहीं। लोंगों ने धन कमाने का एक तरीका प्रभु भक्ति के नाम पर निकाल रखा है। आंख के अन्धे और गांठ के पूरे, वेद शास्त्रों के ज्ञान से अनजान और भोले भाले लोग इनके कुचक्कर में फंसकर अपना समय व धन नष्ट करतें है। भव सागर में गोते खाने के सिवा उनके हाथ कुछ नहीं लगता। बहुत से लोग राह में चलते-चलते क्षण भर रूक कर मन्दिर के आगे हाथ जोडने व शीश झुकानेमें ही प्रभु भक्ति समझतें हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से व्यक्ति किसी फिल्मी गीत जैसे राधा क्यों गोरी है और मैं क्यों काला हूं आदि के रिकार्ड बजाने और सुनने में समझतें हैं कि उन्होंनें प्रभु भक्ति कर ली।

परन्तु जैसा उपर बताया गया है कि एकाग्रचित होकर प्रभु में ध्यान लगाना और उनके गुणों को हृदय में धारण कर आचरण करना ही ईश्वर भक्ति का सही प्रकार है।

पापों से रोकना

प्रश्न उठता है कि परमात्मा हमारे निकटतम है और हर समय हमारे हर कार्य को देखता है तो फिर हमें पाप कर्म करने से रोकता क्यों नहीं। कोई भी माता पिता अपने बच्चों को कोई भी बुरा कर्म करते हुए देखना कभी पसन्द नहीं करते और उन्हें तुरन्त रोकने का प्रयास करतें हैं। जब परमात्मा हमारा माता पिता, बंधु सखा सब कुछ है तो वह हमें क्यों नहीं रोकता ऐसा बहुत से लोग कहते हैं। परमात्मा भी हमें बुरा कर्म करने से रोकते हैं और अच्छा कर्म करने में हमारा उत्साह बढातें हैं। हम जब भी बुरा कर्म करने को उद्यत होतें हैं तो तभी हमारे मन में भय, लज्जा, संकोच और ग्लानि के भाव उत्पन्न होतें हैं। जब इन में से एक भी भाव हमारें मन में उत्पन्न हों तो समझ लेना चाहिए कि यह बुरा कर्म है। और परमात्मा हमें चेतावनी दे रहा है कि हम यह कर्म न करें। सांसारिक माता पिता तो कोई कर्म करने पर ही जान पातें हैं। जबकि परमात्मा तो हमारे मन में भाव उत्पन्न होते ही और उस कार्य के करने से पूर्व ही चेतावनी दे डालता है और फिर भी यदि वह बुरा कर्म हम करतें हैं तो उसका दण्ड हमें अवश्य मिलता है। इसी प्रकार यदि कोई कर्म करने से हमारे हदय में निर्भयता, हर्ष, उल्लास और सन्तुष्टि के भाव उत्पन्न होतें हैंतो समझ लेना चाहिए कि यह शुभ कर्म हैं तथा हमारा उत्साह

बढा रहा है।

लगातार दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति अन्तरात्मा की इस ध्वनि को नहीं सुनते या जान बूझ कर इसकी अवहेलना करते हैं और उसे दबा देते हैं। वे विपरीत दिशा में चलने वाले व्यक्ति हैं, और सदैव भवसागर में डुबकियां खाते रहते हैं और उनका कल्याण कभी नहीं हो सकेगा।

प्रभु से हमारा सम्बन्ध

प्रभु से हमारा सम्बन्ध पिता - पुत्र का सम्बन्ध है। वही हमारा माता पिता बन्धु सखा है। जिस प्रकार पिता के पास जाने के लिए चाहे पिता प्रधानमन्त्री भी क्यों न हो पुत्र को किसी चपडासी या सम्बन्धी अधिकारी की आवश्यकता नहीं पडती। इसी प्रकार हमे परमात्मा से मिलने के लिए किसी देवता या बिचौलिए की जरूरत नहीं। परमात्मा सदैव हमारा ध्यान रखता है।

न्यायकारी

परमात्मा पूर्ण न्यायकारी है। वह सर्वज्ञ है। वह सब के कार्यो को जानता है। स्वत: ही सबके कर्मो का निर्माण कर्ता व फलदाता है। किसी गवाह या फरिश्ते की उसे आवश्यकता नहीं। न्याय करने में उसे किसी वकील दलाल या अपील की भी जरूरत नहीं। परमात्मा सभी कार्यो का फल साथ-साथ तथा यथा समय देता है। उसके घर में न देर है और न अन्धेर। उसने कोई कयामत का दिन निश्चित नहीं कर रखा है। जो यह कहते हैं कि परमात्मा सब के कार्यो का फल या निर्माण कयामत के दिन करेगें वह भी सबके कार्यो का लेखा-जोखा अपने फरिश्तों से लेकर करेगें सही नहीं है। यह बात तर्क संगत नहीं है। इससे परमात्मा में दूसरे पर निर्भर रहना, सर्वशक्ति मान न होना और न्याय में देर लगाने का दोष आता है। वह पूर्ण न्यायकारी है और उसके पास कोई रिश्वत, भेंट, पूजा, सिफारिश से पापों के क्षमा करने या गुनाह बख्शवाने की गुंजाइश नहीं है।

विषमता

एक प्रश्न और किया जाता है कि जब परमात्मा सबको अपना पुंज मानता है और न्यायकारी भी है तो संसार में विषमता क्यो है। कोई शिशु धनवान माता पिता के घर उत्पन्न होता है तो कोई बहुत ही निर्धन माता पिता के घर। किसी के पैदा

होते ही नौकर-चाकरों की भीड़, डाक्टर, नर्स और अनेकों सुविधाओं का सामान उपस्थित हो जाता है। तो कोई बिना किसी छोटी सी आवश्यकता की पूर्ति के बिना बडी दयनीय स्थिति में उत्पन्न होता है। कोई एक दाने को तरसता है तो किसी के लिए दूध घी की नदियां बहती रहती है। ऐसी विषमता क्यों? कोई लूला, लंगड़ा, या विकलांग पैदा होता है उन्हें किस बात का दण्ड? अभी तो उसने कर्म किए भी नहीं , न अच्छे और न ही बुरे। कोई बच्चा अनेकों रोगों से ग्रस्त और तडपता बिलबिलाता रहता है। यह कहां का न्याय हुआ? देखने में तो नास्तिक लोगों की दलीलों में कुछ वजन महसूस होता है, परन्तु यदि थोडा सा ध्यान दिया जाए तो आक्षेप स्वत: ही प्रमाण में बदल जाते है। इस जीवात्मा ने जिसने अभी जन्म लिया है इससे पूर्व भी लाखों-करोड़ों जन्म ले चुका है। हर जन्म में कर्म किए। उनमें जिन कर्मो का फल उन जन्म में भोग लिया उनको छोडकर अन्य कर्म संचित होते जाते हैं और हर जन्म में कर्म करने से पूर्व उन संचित कर्मो का फल इस जन्म में मिलना आरम्भ हो जाता है। प्रभु के न्याय में कोई भेद नहीं, कोई विषमता नहीं, कोई देर नहीं कोई अंधेर नही। हर शिशु का जन्म उसके पूर्व कर्मो के आधार पर होता है। कोई निर्धन के घर जन्म लेकर धनवान हो जाता है तो कोई धनवान के घर जन्म ले कर आगे जाकर कठोर निर्धनता का जीवन व्यतीत करते हैं।

एक बात और हम नित्य देखते हैं कि कही भूकम्प आ गया है कहीं बाढ आ गई है, कहीं बम का गोला फट गया इस तरह बहुत से बच्चे, बूढ़े स्त्री पुरूष मर जाते हैं। बहुत से व्यक्तियों को घनी चोट लगती है और बहुत से धन-माल की हानि होती है और कोई पूर्णतया बच जाते हैं। इन सबका कारण भी पूर्व जन्मों का फल है।

गुरू पीर पैगम्बर

सांसारिक दृष्टि से हर व्यक्ति के तीन गुरू होते हैं। माता-पिता व आचार्य। ये हमें पालने-पोषणे, चलने-फिरने, बोलने, खाने-पीने से लेकर हमें हर बात सिखाते हैं। आरम्भिक शिक्षा से लेकर हमारी पूर्ण शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी में तीनों पूर्ण रूप से साथ निभाते हैं। इनके साथ यदि वास्तविकता से देखा जाए तो हमारा एक गुरू है और वह है परम पिता परमात्मा। संसार में जो भी विद्या है, ज्ञान और विज्ञान है। इन सबका आदि स्त्रोत परमेश्वर है। उसी ने ही सब ज्ञान वेदों के द्वारा मनुष्य जाति के कल्याणार्थ सृष्टि के आरम्भ में ही दिया। ऋषि-मुनि, सन्त महात्मा लोग करोडों वर्षो से उसी ज्ञान की व्याख्या करते, प्रचार प्रसार करते और उनके अन्दर रखे हुए भावों को संसार के समक्ष रखते रहते हैं। उन्होंने इसे कभी अपने ज्ञान होने का दावा नहीं किया अपितु परमात्मा द्वारा प्रदत ज्ञान ही बताया। इसी वेद ज्ञान में ही परमात्मा से मिलने, मोक्ष प्राप्त करने का और सदैव आनन्द पूर्वक रहने का मार्ग भी दर्शाया गया है। परन्तु तीन चार हजार

वर्ष से एक ऐसा सिलसिला चल पड़ा जिससे लोगों में भ्रम जाल पनपने लगा। लोगों की भ्रन्तियों का लाभ उठाकर किसी ने अपने को सिद्ध घोषित कर दिया और अपनी पूजा करवानी शुरू कर दी। कुछ शिष्य बनाए। उन्होने अपने गुरू के सच्चे झूठे गुणगान कर उसे चमत्कारी बताना शुरू कर दिया। परमात्मा की बजाए गुरू पूजा ही मुख्य बन गई। परमात्मा गौण हो गया और गुरू ही मुख्य बन गया।

कितने ही पीर पैगम्बर, औलिया और खुदा का बेटा होने और उसका एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करने लगे। सभी ने अपनी गद्दियां स्थापित कर ली। जो भी उठा उसने अपना मत फैलाना आरम्भ कर दिया। कुछ भय के कारण, कुछ देखा-देखी भेड़चाल की तरह तथा कुछ बहकावे में आकर इन मतों के अनुयायी बन गए। आगे चलकर माता पिता के कारण कुछ हठ के कारण ही इन मतों से चिमटे रहे। मत मतान्तरों का जाल फैल गया। परमात्मा जो सबका मालिक है, सर्वज्ञान दाता है उसको भुला दिया और गुरू, पीर, पैगम्बरों का नाम जपना शुरू हो गया। परमात्मा ही सबका मालिक है और प्राणदाता है। उन कथित गुरूओं, पीर पैगम्बरों का भी वही जीवन दाता है।सब उसी के आश्रित हैं। परमात्मा के भण्डार सदा भरे रहते हैं। वह किसी से कुछ नहीं लेता अपितु देता है। जो जितना वाहे उससे ले सकता है। परन्तु फिर भी लोग अपनी अज्ञानता के कारण इन लोगों के चक्कर में पड़ कर इनको परमात्मा से बड़ा मानने लगे। उनके ही नाम का विमोचन करने लगे। अपनी इच्छापूर्ति के लिए इनकी मिन्नतें मानने लग गए। मजारों, दरागाहो, और समाधियों पर जा कर अपने सरों को पटकने व भेंट, पूजा आदि करने लग गए।

परमात्मा से बढ कर तो क्या कोई उसके बराबर भी नहीं। परमात्मा की तरह कोई अनादि ,अनन्त, अजर, अमर, सृष्टिकर्ता तथा आनन्द स्वरूप नही है। वही गुरू है। उसका हमारा सम्बन्ध पिता-पुत्र के समान है। उसी की उपासना व आराधना करनी चाहिए।

लग्न, मुहूर्त और ग्रह

क्या परम पिता परमात्मा ने कोई समय, दिन, महीना अथवा वर्ष अशुभ बनाया है। और क्या कोई ग्रह किसी के ऊपर चढ़ सकता है। नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। परमात्मा ने कोई दिन, महीना, वर्ष, समय या अंक बुरा नहीं बनाया। यह सब हमारी समझ का फेर है। कुछ लोगों का विचार है कि अमुक दिन यह करना है और यह नहीं करना। अमुक दिन बुरा है या अमुक दिन अच्छा। इन दिनों यात्रा नहीं करनी है। इन दिनो विवाह नहीं करने। कोई मंगलवार, वीरवार, शनिवार के दिनों में कोई काम करने

को बुरा समझते है कोई शुभ लग्न की बात करते हैं ओर कोई किसी समय को अशुभ कहता है। यह सब भ्रमपूर्ण बात है। जिस दिन जिस कार्य को करने में सुविधा हो और जब आवश्यक हो तो वह काम कर लेना चाहिए। यही बात यात्रा के लिएभी है।जहां जाना हो यदि वहां कोई गडबड है, परन्तु सब बातें ठीक होने पर केवल यह सोचकर कि ये चलने का मुहर्त नहीं है न जाना ठीक नहीं है। बिल्ली ने रास्ता काट लिया किसी ने छींकमार दी यह सोचकर न जाना यह गल्त है।

पण्डित जी ने विवाह का लग्न किसी मास की ५ तारीख को दस बजकर तीन मिनट का रखा होता है। हम उसको शुभ लग्न मानकर उस समय का विवाह संस्कार निश्चित कर लेते है। पहली बात तो यह है कि उस दिन और भी सैंकडों विवाह शुभ लग्न बताकर रखे जाते हैं, असुविधाओं का ढेर हमारे सम्मुख आ खड़ा होता है। यदि साहस कर हम किसी प्रकार उन असुविधाओं को लांघ भी गए तो भी उस लग्न पर विवाह संस्कार नहीं होता। होता क्या है कि नाच गाना आदि में ही पण्डित जी द्वारा बताया गया लग्न निकल जाता है। और दस बजकर तीन मिनट का किसी को ध्यान ही नहीं रहता। फिर उस लग्न महुर्त निकलवाने का मतलब ही क्या? लाभ तो इसमें है कि जिस तिथि को असुविधा न हो सामान जुटाने में, वाहन करने में, और दूसरे साधनों में कठिनाई न हो। उस तिथि को विवाह संस्कार रख लेना चाहिए। इसी प्रकार सप्ताह के किसी दिन मंगलवार, वीरवार या शनिवार को सरकारी कार्यालय में काम हो तो क्या उस दिन वहां जाने से इन्कार कर देगें। क्या किसी ऐसे ही दिन घर में पुत्र उत्पन्न हो जाए तो क्या उसे बुरा मनांएगे। कोई आर्थिक लाभ हो तो क्या उसको छोड़ देगें। इन सबका उतर यदि न में हो तो फिर वह दिन बुरा क्यों। अशुभ होने का दोष भगवान पर क्यों। सब दिन सब समय सब घड़ी उतम है। इसी प्रकार कोई तीन के अंक को अशुभ समझते हैं। यह भी गल्त बात है। यदि अशुभ होते तो गिनती व गणित विद्या में इनका प्रयोग भी नहीं होता। माता पिता व पुत्र ये तीन मिलकर परिवार न होता। ब्रह्मा विष्णु महेश ये तीन देव न कहे जाते। अ, उ, म तीनअक्षर मिलकर परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म न होता। ऐसी कितनी ही संख्याएं गिनाई जा सकती हैं। कोई भी अंक अशुभ नहीं होता।

किसी के सिर पर ग्रह चढने की बात भी पूर्णतया निरर्थक व हास्यस्पद है। एक छटांक भर वजन किसी के सर पर रख दो तो उसे पता चल जाता है। परन्तु आश्चर्यजनक बात यह है कि लाखों करोड़ों टन वजनी ग्रह सर पर चढ़ जाए तथा हमें पता ही नहीं चले। इससे भी अजीब बात यह है कि ग्रह हमारे सर पर और बताएं ज्योतिषी जी। इतना बडा ग्रह सर पर चढ़ जाए तो व्यक्ति बचे कैसे। वैसे दबकर चकनाचूर न हो जावे। मजे की बात तो यह है कि उस ग्रह को हटावे झाड फूंक कर ज्योतिषी जी जैसे वह

ग्रह न होकर रबड़ का गुब्बारा है।

ऐसे कुचक्करों में पड़ना, भ्रमजालों में पड़कर अपने मस्तिष्क पर बोझ रखना ठीक नहीं। शुभ व अशुभ तो हमारे कर्म हैं। अत: हमें चाहिए कि हम सदा ही शुभ कर्म करें और आनन्द में रहें।

व्रत और उपवास

मनुष्य को अपना चरित्र उतम बनाने, उसका शरीर स्वस्थ रहे और उसका आत्मिक व मानसिक बल बढ़े इसके लिए क्या साधन बनाना चाहिए ? हमारे ऋषि-मुनियों ने इसके लिए एक उतम साधन बताया है व्रत और उपवास। व्रत कहते है किसी नियम को अपने जीवन में धारण करना। जैसे :- सत्य बोलना, चोरी न करना, अहिंसा का पालन करना। अर्थात दोषों के त्यागना तथा गुणों को ग्रहण करना व्रत है। और व्रतों को ग्रहण करने से उन पर अडिग रहकर आचरण करने से मनुष्य का मनोबल बढ़ता है और वह चरित्रवान कहलाता है।

इसी प्रकार समय समय पर निराहार रहना। दोनों समय या एक समय भोजन न करना उपवास कहलाता है। यह मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। इससे कई रोगों से छुटकारा मिलता है पेट के कोई रोग नहीं होते और यदि कोई हो भी जाए तो वह बिना औषध के भाग जाता है। परन्तु आजकल इन दोनों का रूप बिगाड़ कर रख दिया है। व्रत और उपवास को एक ही रूप मान लिया गया है। मंगलवार आया तो कहने लगे कि आज हनुमान जी का व्रत है। यह हनुमान जी का व्रत कैसे हुआ। व्रत तो यह है कि हनुमान जी के विद्वता, ब्रहाचार्य, शास्त्रों का ज्ञान आदि गुणों को धारण करना। कुछ समय भूखा रहना तो उनका व्रत न हुआ। हनुमान जी पूर्णतया शाकाहारी थे। वे कोई मादक द्रत्य या तम्बाकू का सेवन नहीं करते थे। उनके पद चिन्हों पर चलें तो ठीक नहीं तो सब बेकार।

इस प्रकार कृष्ण जन्माष्टमी के दिन निराहार रहने का नाम व्रत है। पूछो तो कहते हैं कि कृष्ण जी का जन्म हुआ था इसलिए व्रत रखते हैं। क्या अजीब बात है यदि घर में बेटे, पोते का जन्म हो तो क्या खूब लम्बी चौडी पार्टियां रखते हैं। सारा दिन खूब खाना पीना चलता है। सारा दिन खूब धमाका होता है। फिर कृष्ण जन्म पर भूखे क्यों? कहतें हैं उस दिन भी तो बरफी, पेड़े आदि खाते हैं। दिन भर भूखे रहकर देर रात को भोजन करना बुद्धिमता नहीं। यह तो कई रोगों को निमन्त्रण देना है। अगले दिन अपचन हो जाता है। पेट की कई बिमारियां हो जाती हैं। जन्माष्टमी का व्रत तो तब है कि जो उपदेश कृष्ण जी महाराज ने गीता के माध्यम से हमें दिए उसको हम

अपने जीवन मे धारण करें वीरोचित और न्यायसंगत कर्म करें तो ठीक अन्यथा कुछ भी नहीं। इसी प्रकार और जो भी वर्ष भर में अनेकों व्रत रखतें हैं जो कि व्रत की भावना के विपरीत है।

उपवास और व्रत का अर्थ गड़ बड़ा दिया है। उपवास का प्रकार तो यह है कि प्रात: कालीन शौच आदि से निवृत होकर स्नान करें। खाएं पीएं कुछ न। सायं को फलों का थोड़ा सा रस पी लें। अगले दिन सादा व हल्का सा भोजन करें। यह तो उपवास हुआ और स्वास्थय के लिए लाभप्रद भी।

व्रत में कोई कार्य पूर्ण करने की धारणा कोई स्वाध्याय करना, प्रभु भक्ति करना जीवनोपयोगी गुणों को धारण करना आदि आ जाते हैं। यही उतम प्रकार का उपवास व व्रत है।

खान पान कैसा हो

कभी-कभी उपवास करने से स्वास्थय बनाने में सहायता मिलती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। पर हमें खाना क्या चाहिए जिससे हमारा स्वास्थ्य निरोग रहे। परमात्मा ने मनुष्य को शाकाहारी उत्पन्न किया है। उसके मुख दांत, जबड़े, नाखून आदि सब अंग दर्शाते हैं कि मनुष्य का प्राकृतिक भोजन शाकाहार है। परन्तु बहुत से मनुष्य अज्ञानतावश और जिहवा के स्वाद के कारण मांसाहार करने लग गए हैं। जो कि नितान्त हानिकारक व अनेकों रोगों को उत्पन्न करने वाला है।

इस सृष्टि में दो प्रकार के प्राणी हैं। एक शाकाहारी व दूसरे मांसाहारी। दोनों प्रकार के प्राणियों की रचना भिन्न प्रकार की होती है। जो मांसाहारी हैं। उनके दांत व नाखून लम्बे व नुकीले हैं। उनकी आंख चमकीली व अंधेरे में देख सकने में समर्थ होती है। वे अपने शिकार पर झपटते है। और दबोच कर उन्हें कच्चा चबाना शुरू कर देते हैं। इसके विपरीत शाकाहारियों के मुख, दांत, जबड़े नाखून आदि अंग मांसाहारियों से भिन्न हैं। शाकाहारी पशु भूखा मर जाएगा परन्तु मांस नहीं खाएगा।

मनुष्य ने अपना खान पान सब बिगाड़ के रख लिया है। दूध, शाक और फलों को छोड़ उसने मछली, मांस, मुर्गा, अण्डा आदि पर बल देना आरम्भ कर दिया। मनुष्य समझता है कि मांस खाने से उसका शारीरिक बल बढ़ता है परन्तु यह मिथ्या है। जिस प्राणी का जो भोजन है उसी से उसका शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। दुनियां की प्रतियोगिताओं में बहुद्या शाकाहारी मांसाहारियों पर विजय पाते हैं। मांसाहारियों के पांव शीघ्र उखड़ जाते हैं। उनके शरीर में शीघ्र थकावट आ जाती है। शरीर में अनेकों रोग उत्पन्न होने लग जाते हैं जो बहुत ही भयानक होते हैं।

मांसाहार से मनुष्य का स्वभाव भी बदल जाता है। मानसिक वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। काम कोघ्र बढ़ जाते हैं। परस्पर स्नेह की भावना नहीं रहती। मन की शान्ति नष्ट होकर लड़ाई-झगड़े की प्रवृति बन जाती है। छीना झपटी व अनाधिकार चेष्टा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं और सारा सामाजिक जीवन नष्ट हो जाता है।

शाकाहारी शान्ति प्रद होते हैं। काम-क्रोध को दबा सकने का सामर्थ्य उनमें होता है। वे लड़ाई झगड़े से दूर रहकर प्रेम पूर्वक रहते हैं। इस प्रकार उनका सारा जीवन आनन्दमय बना रहता है।

मादक द्रव्यों, शराब आदि का सेवन भी नहीं करना चाहिए। भांग को शिवजी का पेय कहकर लोग मिथ्या भावों से ग्रस्त हो जाते हैं और उन्हें सिवा हानि के कुछ नहीं मिलता। मादक द्रव्यों से बुद्धि मलीन हो जाती हैं। अनेक रोग शरीर में लग जाते हैं। और मदिरापान करने वाले जो बुरी संगत में पड़ पहले तो सुख का अनुभव करते हैं परन्तु बाद में मदिरा ही उनको पीने लग जाती है। और बुढ़ापे से पूर्व ही वे लोग अनेक कष्ट सहते इस संसार से विदा हो जाते हैं। इस प्रकार जहां शारीरिक हानि होती है वहीं आर्थिक दशा भी बिगड़ जाती है। उसके बच्चों को भर पेट भोजन नहीं मिलता। शरीर को रोगों से छुटकारा दिलाने के लिए न जाने कितना रूपया खर्च हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति की मान मर्यादा खत्म हो जाती है।

हमें चाहिए कि अण्डे मांस मछली और मादक द्रव्यों को छोड़कर मनुष्योचित सादा भोजन जिसमें दूध, घी, दही, मलाई, फल अनाज, शाक, सब्जियों सूखे मेवे इत्यादि का सेवन करें। सात्विक वृति बनावे व आनन्दमय जीवन व्यतीत करें।

सामाजिक व्यवस्था व समाजवाद

जिस देश के लोगों का खाना पीना सात्विक अर्थात अन्न दूध दही फल शाक इत्यादि युक्त व निरामिष होता है, रहन सहन सादा होता है, उनके विचार भी उत्तम होते हैं। उनकी सामाजिक व्यवस्था ऐसी होती है जिसमें किसी प्रकार का द्वेष या अनाधिकार चेष्टा की कोई गुंजाइश न हो। भारत देश ऐसा ही शान्ति प्रिय देश रहा है। इस देश का सब काम बड़े ही उत्तम ढंग से चलता था। जनता आपस में बड़े प्रेम से रहती थी। लडाई झगड़ा, चोरी, डाका, बलात्कार, भुखमरी, शोषण, दूसरे का अधिकार छीनना, अज्ञानता, व्यभिचार, अत्याचार आदि कोई भी बात इस देश में नहीं थी। सारा संसार इस देश को अपना गुरू मानता था। दुनियां के अन्य सभी देश यहां से शिक्षा ग्रहण करते थे। इस तरह संसार में कोई लड़ाई झगड़े वाली बात न थी। वेद, ज्ञान, आस्तिकता और खान पान के साथ इसका एक मुख्य कारण था यहां प्रचलित सामाजिक व्यवस्था।

यह व्यवस्था दो प्रकार की थी। (१) आश्रम व्यवस्था (२) वर्ण व्यवस्था

आश्रम व्यवस्था:-यह व्यवस्था व्यक्तिगत होती थी। इसके अनुसार मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानते हुए, पच्चीस पच्चीस वर्ष के चार भागों में बांट दिया गया था। यह चार भाग बह्मचार्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, और सन्यास आश्रम के नाम से जाने जाते थे। जब तक इन चार आश्रमों की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही मनुष्यों का जीवन आनन्दमय रहा। बड़े आराम से जीवन के सौ वर्ष व्यतीत कर मनुष्य परम पिता परमात्मा के मोक्ष धाम को प्राप्त कर लेता था। इस आश्रम व्यवस्था का कड़ाई से जब तक पालन किया गया, तब तक किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं हुआ कभी कोई असामयिक मृत्यु न होती थी। घर परिवार के अन्दर बाप-बेटे, भाई-भाई, सास-बहु, में कोई झगड़े नहीं होते थे। जब स्वार्थ रहित, त्यागमय और परस्पर प्रेम का जीवन हो तो लड़ाई झगड़े, द्वेष-ईर्ष्या, छीना-झपटी, अनाधिकार चेष्टा जैसी बातें होती ही नहीं। सो जीवन को शान्तिमय तथा आनन्दमय बनाने का एकमात्र इलाज है आश्रम व्यवस्था जो निम्न प्रकार हैं।

ब्रह्मचार्य आश्रम:-यह चारों आश्रमों में सबसे पहला आश्रम है। जिस प्रकार किसी भवन की नींव पक्की और सुदृढ़ हो सके, उसी प्रकार जीवन रूपी भवन के लिए यह आश्रम बहुत आवश्यक है। पहले कुछ वर्ष बच्चा अपने माता पिता की देख-रेख में पलता है। फिर उसे गुरू के आश्रम (गुरूकुल) में भेज दिया जाता है। कोई बच्चा किसी राजा का बेटा है या किसी निर्धन परिवार से सम्बन्धित है सबको एक समान एक ही स्तर पर और एक ही ढंग से शिक्षा दी जाती है। किसी प्रकार का कोई भेदभाव नही रखा जाता। सबको एक समान भोजन वस्त्र आदि दिए जाते हैं। गुरूकुल में सब बच्चों को एक समान शिक्षा दी जाती है। सबकी सर्वागीण उन्नति का ध्यान एक सा रखा जाता है। फिर भी जो बच्चा अपनी रूचि और बुद्धि के अनुसार जिस क्षेत्र में अधिक प्रतिभावान बनता है उसको उसी क्षेत्र में विशेषज्ञ बनाया जाता है। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त कर बच्चा जिस वर्ण के योग्य होता है उसे उसी वर्ण में भेज दिया जाता है। कौन ब्राहमण वर्ण के योग्य है कौन क्षत्रिय वर्ण के लिए उपयुक्त कौन वैश्य वर्ण में जाना चाहिए उसे उसी वर्ण में भेज दिया जाता है। यदि उसके माता पिता उसी वर्ण के हों तो ठीक, नहीं तो इस व्यवस्था के अन्तर्गत परिवार भी बदले जा सकते हैं। जो इन तीनों वर्णो के योग्य बच्चा न हो तो उसे शुद्र वर्ण में रहकर ही सेवाभाव से कार्य करने को कहा जाता है।

गृहस्थ आश्रम:-विद्या ग्रहण करने और शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर और अपने कार्य में निपुणता प्राप्त कर बच्चा जो अब पच्चीस वर्ष का नवयुवक हो गया होता है गृहस्थ आश्रम के योग्य बन जाता है। अपने उपयुक्त अपने ही वर्ण की सुयोग्य कन्या

से विवाह में बन्ध जाता है। अपने परिवार व शेष तीनों आश्रम वालों के पालन पोषण खान पान का पूर्ण दायित्व ग्रहस्थ आश्रमी का हो जाता है। इस आश्रम में पूर्ण धर्मानुसार आचरण करता हुआ वह अर्थ का संचय करता है। खूब कमाई करना उसका अधिकार है। परन्तु किसी के शोषण करने का नहीं। जो कमाई करे धर्म की मर्यादा में करे और उसके हित के लिए उसे खर्च भी करे। दान-दक्षिणा भी दे। भूखों को रोटी, नगों को कपड़ा और जरूरत मन्दों की आवश्यकता पूर्ति करता हुआ व अपने आश्रम के पच्चीस साल पूरे करता है।

गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में बड़ा माना जाता है। इसका कारण यह है कि एक तो शेष तीनों आश्रमों के खान-पान, वस्त्र आदि का सारा भार इसी आश्रम पर होताहै। दूसरे मनुष्य का सामाजिक चरित्र, लेन देन का व्यवहार, वर्ताव, शांतिप्रियता, परस्पर प्रेम आदि की परीक्षा एवं विकास व्यवहारिक रूप के एवं क्रियात्मक रूप से इसी आश्रम में प्रकट होते हैं।

वानप्रस्थ आश्रम:- पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ आश्रम का आनन्द उठाकर अपनी सारी जिम्मेदारियों को पूर्ण कर व्यक्ति अपने सभी दायित्व अपने बेटे को जो कि ब्रहमचार्य आश्रम में रहकर अपने जीवन भार को संभालने योग्य होकर लौटता है,, सौंप देता है। यह नहीं की पचहतर वर्ष की आयु हो गयी तब भी माया जोड़ने की होड़ में लगा रहे जैसा कि हम आज-कल देखते हैं। अब समय आ गया है स्वाध्याय करने का। वेद शास्त्र के मंथन का। इस आश्रम में मनुष्य फिर अपने शरीर और मन की साधना करता है। सभी दुखों, कष्टों और सभी प्रकार की अवस्थाओं का सामना करते थे, जिससे वे अपने को तैयार करते थे। जिस प्रकार ब्रहमचार्य आश्रम एक प्रकार से गृहस्थ आश्रम की तैयारी है। ठीक उसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम भी सन्यास आश्रम की तैयारी है। अपनी धर्मपत्नी को पुत्र और अन्य परिवारजनों के सहारे छोड़ सकता है। और यदि पत्नी चाहे तो वह भी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकती है। जहां दोनों पति-पत्नी पूर्ण संयम में रहकर अपना जीवन यापन करते हैं। वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य को अपना घर-बार छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं।

सन्यास आश्रम:- वानप्रस्थ में स्वाध्यायशील रहकर संयमी बनकर अपनी इन्द्रियों पर काबू पाकर मनुष्य अपने जीवन की चौथी मंजिल पर पहुंच जाता है। इसे सन्यास आश्रम कहते हैं । इसमें काम, क्रोध, मोह आदि को तजकर घर बार, भाई बन्धुओं अपने सगे सम्बन्धियों से रिश्ता तोड़, सभी संसार को अपना कुटुम्ब समझते हुए अपने द्वारा उपार्जित ज्ञान को दूसरों में बांटता है। इस बात के होते हुए भी कि ब्रह्मचर्य आश्रम में सर्वगुण सम्पन्न हो व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। फिर भी उसका

पांव फिसल न जाए, वह अपने कर्तव्य से विमुख न हो जाएं उसको बार -बार चेतावनी देना अपने कर्तव्य का ध्यान दिलाना सन्यासी का धर्म है। सन्यासी अधिक दिनों तक एक ही स्थान पर नहीं रहता। भिक्षा वृति कर अपना पेट भरता है। अधिक मात्रा में (अपनी न्यूनतम आवश्यकता से अधिक) धन अपने पास नहीं रखता। हानि-लाभ, सुख-दुख सब उसके लिए समान होता है। भिक्षावृति से वह अपने अहंकार भाव का त्याग करता हुआ प्रभु उपासना में मग्न रहता है और इस प्रकार अपने धर्म को निभा परमधाम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार हमने देखा कि संसार के अन्दर शान्ति और सुख का प्रसार करने के लिए इससे उत्तम औषध या मार्ग नहीं है। यदि इस व्यवस्था को अपना लिया जाए तो संसार से कष्ट-पीड़ा, लड़ाई-झगड़ा, भुखमरी, शोषण, उंच-नीच का भाव काले गौरे का रंगभेद नसलभेद के झगड़े सब समाप्त होकर सच्चा समाजवाद स्थापित हो सकता है।

इसके पश्चात वर्ण व्यवस्था है जिसका थोड़ा सा आभास आश्रम व्यवस्था में दिया गया है। जिस प्रकार आश्रम चार उसी प्रकार वर्ण भी चार हैं। १ ब्राह्मण २ क्षत्रीय ३ वैश्य ४ शूद्र

१ ब्राह्मण वर्ण:- जो युवक हर प्रकार से विद्वान होकर वेद शास्त्रों का ज्ञाता हो पढ़ने पढाने, शिक्षा के क्षेत्र में रूचि रखता था वह ब्राह्मण वर्ण में आ जाता है। पढ़ना पढ़ाना, विद्या का प्रसार करना, यज्ञ करना कराना, समाज में व्यापी बुराईयों का शयन करने, परोपकार के कार्यो में लगाना आदि कर्म ब्राह्मणों के हैं। दान दक्षिणा पाकर अपनी आजीविका कमाते हैं।

२ क्षत्रिय वर्ण:- जो शस्त्र अस्त्र सीखकर, युद्ध कौशल में पारंगत निर्भीक बलवान युवक होता था उसे क्षत्रिय वर्ग में भेजा जाता था। राष्ट्र रक्षा, देश का प्रहरी बन, शत्रुओं से लोहा लेना, निर्बल और असहायों की सहायता करना। भयानक जंगली जानवरों से बचाना, हर प्रकार से देश और जाति की सुरक्षा के कार्य करना उसका कर्तव्य होता था। राज-काज भी क्षत्रिय वर्ग की जिम्मेवारी थी।

३ वैश्य वर्ण:- जो युवक व्यापार कार्य में रूचि रखता होता, उसे वैश्य वर्ग में भेजा जाता है। खेती करना, पशु पालन उत्पादन का प्रबंध करना, सभी प्रकार से सबके भोजन की व्यवस्था करना, धर्म मर्यादा में रहते हए धन उर्पाजन करना दीन-दुखियों, भूखे नंगों की आवश्यकताओं को पूरा करना, व्यापार करना आवश्यकता पडने पर अपना धन राष्ट्र-हित में सहर्ष दे देना इत्यादि वैश्य वर्ण का धर्म माना जाता था।

४ शूद्र वर्ण:- जो पूरा करने पर भी विद्या से वंचित रहते थे, कोई कर्म जो उपरोक्त तीनों वर्णो में बताएं हैं नहीं कर सकते थे। जिनको पढ़ाने और शिक्षित करने

पर भी विद्या न आती थी। वे शूद्र वर्ण ग्रहण करते थे। शारीरिक सेवा करना ही उनकी जिम्मेवारी थी।

इस प्रकार यह वर्ण व्यवस्था थी। इससे बढ़कर कोई समाजवाद हो ही नहीं सकता। इस व्यवस्था में कोई शोषण नहीं था। सभी लोग बड़े आराम के साथ अपना जीवन व्यतीत करते थे इन आश्रमों में एक बात सबसे बड़ी यह थी कि वर्ण बदले जा सकते थे। भ्रष्ट कर्म करने से ब्राहमण शूद्र हो सकता था और उतम कर्म करने पर और बाद में विद्यादि ग्रहण कर लेने और उपयुक्त योग्यता पा लेने पर शूद्र भी ब्राह्मण वर्ण में आ सकता था। इस प्रकार वर्ण छूटने के भय से कोई भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता था ओर भ्रष्टाचार आदि का कोई स्थान इस देश में नहीं था।

उपरोक्त आश्रम व वर्ण व्यवस्था को प्रेरणा देते रहने के लिए, इसे सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा किसी न्यूनता की सम्भावना को दूर रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने कुछ पर्व मनाए जाने निश्चित किए थे। यूं तो भारत देश में हर दिन त्यौहार हैं। हर दिन खूब प्रसन्नता के साथ बीतना चाहिए। चार पर्व तो आदि सृष्टि से ही जब से मानव जाति बनी है हमारे देश में मनाए जाते थे। यह है श्रावणी रक्षा बंधन, दशहरा विजय दशमी, दीपावली तथा होलिका पर्व। इन सभी पर्वों को सभी वर्ण आपस में मिलजुल कर आपस में प्रेम से मनाते चले आ रहे है। किसी घटना विशेष के कारण यह पर्व मनाए जाने आरम्भ नहीं हुए थे। ये तो आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था में कोई ढ़ील न आए इसी कारण मनाए जाने लगे थे। कालान्तर में यदि कोई घटना इस दिन घट गई तो इसका मतलब नहीं कि उस घटना के कारण यह पर्व मनाया जाता है। आजकल दशहरा और दीपावली पर्व को श्री राम जी द्वारा रावण को मारने तथा दीपावली वाले दिन अयोध्या मे लौटने से जोड़ दिया गया है। यह वास्तविकता नहीं। न तो रावण ही दशहरे वाले दिन मारा गया और न ही श्री राम दीवाली वाले दिन अयोध्या लौटे। इसी प्रकार भक्त प्रहलाद का सम्बन्ध होलिका पर्व से जोड़ दिया गया है। यह सब बातें तथ्यों के विपरीत हैं। यदि बाल्मीकि रामायण का बारीकी के साथ अध्ययन बिना पक्षपात के किया जाए तो पता चलता है कि रावण का वध और श्रीराम के अयोध्या लौटने की घटनाएं चैत्रमास के कृष्ण पक्ष में हुई थी। कार्तिक मास में नहीं। राम जी त्रेता युग के अंतिम चरण मे हुए जबकि ये पर्व तो सतयुग में भी बनाए जाते थे। रामनवमी का सम्बन्ध राम से है इसमें कोई सन्देह नहीं। अत: जिस भावना से ये पर्व मनाए जाने निश्चित हुए थे उसी भावना से मिलजुल कर बड़े प्रेम से उन्हें मनाया जाना चाहिए।

इन चार पर्वो के अतिरिक्त और भी त्यौहार हैं जो हमारे पूर्वजो की शौर्य गाथा के लिए या उनके जन्म व बलिदान के लिए मनाए जाते हैं उनको खूब उत्साह से मनाया जाना चाहिए और हमें उनसे शिक्षा प्राप्त करते हुए अपने पूर्वजों की याद को सदा ताजा

बनाए रखना चाहिए इस प्रकार हमने देखा कि हमारे देश में आश्रम व वर्ण व्यवस्था का जो प्रचलन था वह कितना स्वाभाविक और प्रभावशाली था। काश आज भी यदि हम अपने देश में आश्रम व वर्ण व्यवस्था को लागू करते तो तमाम रगड़े झगड़े समाप्त हो जावें। ऊंच नीच व धनी और निर्धन के भेदभाव की सभी सम्भावनाएं समाप्त हो जावें। हमारी मान्यता है कि राष्ट्र की ही नहीं अपितु समस्त संसार के सभी रोगों की यह अचूक औषध है।

जातपात

अज्ञान और मोहवश धीरे-धीरे उपरोक्त वर्ण व्यवस्था में बिगाड़ आना आरम्भ हो गया। गुरूकुल प्रणाली भंग होने लगी। राजा लोग और धनी सशक्त व्यक्ति अपने बच्चों का लालन पालन घर ही करने लगे। गुरूओं को दक्षिणा वृति से हटाकर वेतन भोगी बना दिया जाने लगा जिसके कारण सभी मान मर्यादा और मान्यताएं धीरे-धीरे निर्बल होकर लुप्त प्राय हो गई। मृत्यु कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था ने जात पात ने जन्म के आधार पर जात-पात का रूप धारण कर लिया ब्राह्मण के घर जन्मा बालक अयोग्य और निकम्मा होने पर भी ब्राह्मण कहलाने लगा यही हाल क्षत्रियों और वैश्यों की संतति का हुआ। और फिरअपने गुण छोड़कर पिता के कार्यो के आधार पर जात व्यवस्था बन गई एक वर्ण में ही सैंकड़ों जात उत्पन्न हो गई और इस जात पात के चक्कर ने ऐसा विकराल रूप धारण कर लिया कि देश के अन्दर फूट और उंच-नीच, द्वेष अहंकार और झूठे घमण्ड़ की भावना पैदा होकर देश गैरों का दास बन गया। जो देश कभी इतना उन्नत था कि सारी दुनियां का गुरू था स्वयं अवनति के गहरे गडढ़े में जा गिरा।

परन्तु इस बनावटी जाति व्यवस्था के अतिरिक्त जो वास्तविक जाति व्यवस्था है वह भगवान की बनाई व्यवस्था है और वह जन्म से है। भगवान की बनाई जातियां जन्म के आधार पर लाखों प्रकार की हैं जिससे हर जाति का घटक अपनी आकृति के अनुसार अलग पहचान बनाता है जैसे मनुष्य ,जलचर, नभचर और दूसरे जीव जन्तु आदि। इनमें भी दो जातियां लिंग भेद से नर जाति व स्त्री जाति है। इनमें सबसे विशेष बात यह है कि आप संसार में कहीं घूम आएं हर जाति वर्ग की तुरन्त पहचान आपको होगी। घोड़ा जैसे भारत में है वैसे ही चीन, जापान व अमेरिका में भी मिलेगा। अत: जो प्राणी सम्पूर्ण विश्व में एक ही शक्ल नकल के हैं उनकी एक जाति हुई। इस से सिद्ध हुआ कि मनुष्य द्वारा बनाई जातियां ब्राहम्ण, बनिया, जाट, लौहार, कुम्हार भंगी चमार आदि सब गलत है क्योकि अपने पेशे को बदल कर मनुष्य अपनी पहचान बदल सकता है। परन्तु प्राकृतिक जातियां बदली नहीं जा सकती घोड़ा बैल नहीं बन सकता और भैंस गाए

नहीं बन सकती। इस तरह अपनी पहचान न बदल पाने के कारण यह सब अलग अलग जातियां है। सो मनुष्य ने जाति पाति के अधार पर जो भेदभाव खड़ा कर लिया है। वह बहुत ही दोष पूर्ण है। इससे समाज की व्यवस्था फैलती है। लड़ाई, झगड़ा, द्वेष ईर्ष्या उंच नीच के भेदभाव उत्पन्न होकर अशान्ति ही पनपती है। जो प्रकृति के अनुसार जिस जाति में जन्म से आगया वह एक कर्म करते भी अपनी जाति नहीं बदल सकता जैसे ऊंट, घोड़े, गधे, खच्चर इत्यादि का पेशा बोझा उठाना और सवारी ढोना है परन्तु जाति सबकी अलग है। जन्म से सभी मनुष्य एक हैं इनके पेशे बदल सकते हैं और इसी प्रकार वर्ण भी। आपस में छुआ छूत और उंच नीच की भावना रखना निन्दनीय है गोरे काले के रंग भेद पर घृणा मानवता के प्रति अपराध है।

कैसे रहें

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका कर्तव्य है कि एक दूसरे के साथ मिलकर रहें। दूसरे के दुख दर्द में काम आएं। जैसा व्यवहार वह चाहता है कि कोई उसके साथ करे तो भी दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करें। अच्छे व्यक्ति का पूरा सम्मान करें। यदि कोई विद्वान गुणी व्यक्ति शारीरिक रूप से कुछ दुर्बल भी है तो भी उसकी बात माननी चाहिए। और अधर्मी दुष्ट कितना ही बलवान क्यों न हो उसका सामना कर उसे उसके किसी भी दुष्ट कर्म का दण्ड दिया जाना चाहिए। आततायी या बुरे को क्षमा नहीं करना चाहिए। उसे उचित दण्ड मिलना ही चाहिए। हां कोई अपनी भूल स्वीकार करे और भविष्य में ऐसा दुराचारण करने से सदैव दूर रहने की प्रतिज्ञा करें तो ऐसे व्यक्ति को सावधान कर क्षमा करने में कोई हानि नहीं। अपने आप को सब बुराईयों से बचा कर रखें अनाधिकार चेष्टा न करें। अपने जीवन को उस कमल के पुष्प के समान बनाएं जो कीचड़ और पानी में पड़ी गन्दगी से सदैव उपर उठ कर रहता है उसमें विलीन नहीं होता है। दुख दर्द में घबराएं नहीं। ऐश्वर्य में कभी अहंकार न करें। प्रभु और मृत्यु को सदा याद रखें।

मनुष्य और पशु में अन्तर

इससे पूर्व पृष्ठों में हमने देखा कि जातपात जो प्रभु द्वारा रची गई है वही वास्तविकता है अन्य नहीं। यहां एक बात भी बड़ी स्पष्ट है कि खाना-पीना, सोना, सन्तान उत्पन्न करना और भय का अनुभव करना ये सब मनुष्यों और पशुओं में एक समान हैं। ये सब क्रियाएं मनुष्य भी करते हैं तथा पशु भी। जबकि पशु मनुष्य की अपेक्षा अधिक संयम

से रहते है। पशु अपने निर्धारित खान पान के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं खाते। शेर-चीते, भेडिए को घास-फूस खाते और गाएं, मृग हाथी आदि को मांस आदि खाते कभी भी किसी ने नहीं देखा। मनुष्य ही दो पांव वाला ऐसा पशु है जो अपने खान-पान, सोने और मैथुन इत्यादि कर्मों में कोई संयम नहीं वर्तता। इन बातों में वह पशुओं से भी गया गुजरा है। फिर मनुष्य किस बात में पशुओं से बढ़कर है। उनमें क्या अन्तर है?

उनमें सबसे बड़ा अन्तर एक तो यह है कि पशु भोग भोगी होने के कारण केवल भोग ही भोगता है। अपने विचार करके कोई नया काम अपने उत्थान या पतन का नही कर सकता। उसमें कोई विचार शक्ति नहीं है। वह अपना या अपने साथियों का बचाव, रक्षा, रोग, निरस्तीकर्ण, भूख आदि लगने में कोई सहायता करने में असमर्थ हैं वह केवल अपने लिए ही अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार कोई कार्य कर सकता है उससे अधिक नहीं। मनुष्य में विचार शक्ति है। अपने भले-बुरे, उत्थान-पतन की बात सोचकर तदानुसार कार्य कर सकता है। अपने भाई बन्धुओं व साथियों के लिए भी कार्य कर सकता है। उत्तम कर्म करके अपने जीवन को उंचा उठा सकता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते सामूहिक लाभ-हानि के लिए सब परस्पर मिलकर कार्य कर सकता है। पशु यह सब कुछ नहीं कर सकता। धर्म की भावना, धर्मानुकूल आचरण, भविष्य रूप निर्माण की भावना ऐसी हैं जो मनुष्य को पशु की अपेक्षा विशिष्ट स्थान देती है। धर्म से विहिन मनुष्य पशु के समान ही होता है।अपने धर्म को तजकर मनुष्य पतित हो जाता है और यही सबसे बड़ा अन्तर है मनुष्यों और पशुओं में।

मातृ शक्ति

महिलाओं का आसन पुरूषों की अपेक्षा सदा उंचा है। स्त्री जाति को सदा सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए। पढ़ना लिखना, अस्त्र शस्त्र सीखना और अन्य विधाओं में निपुण होने का महिलाओं को भी उतना ही अधिकार है जितना की पुरूषों का। किसी देश और जाति के उत्थान में स्त्री जाति का सबसे बड़ा योगदान होता है। बच्चों के लिए पहला गुरू माता होती है। वह जैसा चाहे उसका निर्माण कर सकती है। यदि माता पढ़ी लिखी, गुणवान एवं विदुषी नहीं होगी तो बच्चों को कैसे बड़ा व्यक्ति बना सकती हैं। वे बच्चे जो माता की उत्तम शिक्षा से वंचित रह जाते हैं कभी देश के कर्णाधार नहीं बन सकते। हमारे देश में न जाने किस तरह कन्या को जन्म लेते ही मार देने की कुप्रथा चल पड़ी थी। इसके साथ विधवा हो जाने पर पति के साथ ही जल जाने पर विवश किया जाने लगा था। पुरूष तो विधुर हो जाने पर दूसरा विवाह कर सकता

था पर महिला विधवा होने पर दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। उन्हें समान अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। उन्हें पैर की जूती समझा जाने लगा था। एक पुरूष एक समय में पहली पत्नी के होते भी और विवाह कर लेता था। ये सब कुप्रथा देश में आई तभी देश विनाश की तरफ चल पड़ा। सत्य कहा है कि जिस देश में मातृ शक्ति का सम्मान नहीं होगा वहां अनेकों भीषण आपदाएं स्वत: आ जाती हैं। हमारे घरों में माता, बहन, बेटी, और धर्म पत्नी ये चार देवियां होती हैं। हमें जितना उनके आदर मान का ध्यान होगा उतना हमारा घर स्वर्ग होगा। अत: माताओं को सामाजिक और राजनैतिक सभी कार्य विधियों में भाग लेने के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होने चाहिए। जो व्यक्ति, समाज या देश माताओं की अवहेलना करता है वह स्वयं ही अपना बेडा मंझध ाार में डुबोने का उतरदायी होता है। स्त्री जाति को वेद पढ़ने, यज्ञ करने, यज्ञोपवीत ध ाारण करने का पूर्ण अधिकार पुरूषों के समान होने चाहिए। पुरूषों का कर्मणा है कि हर कार्य में चाहे छोटा हो या बड़ा अपनी धर्म पत्नी की सम्मति अवश्य करें। ऐसा करने से उन्हें अवश्य लाभ होगा। घर में विवाह कर आई बहु को उसके सास और ससुर द्वारा अपनी बेटी के समान ही आदर मान देना चाहिए। हमारे देश में सीता, सावित्री, गार्गी, अनुसूईया, रानी लक्ष्मी, जीजाबाई, पदम्नी जैसी अनेकों विदुषी एवं बहादुर महिलाएं हुई हैं जिनकी संसार भर में मान्यता है।

नरक स्वर्ग

जैसा पूर्व पृष्ठों में दर्शाया गया है कि हर प्राणी अपने किए हुए कर्मों का फल अवश्य भोगता है। जो सदा शुभ कार्य करता है। दीन दुखियों की सेवा व सहायता करता है। और हर प्रकार से अपना आचरण धर्मानुकूल बनाता है। तथा सदा सुख और आनन्द की अनुभूति करता है। सदा प्रसन्नचित रहता है। उसे कोई मानसिक या शारीरिक कष्ट नहीं होता । वह अपना जीवन आनन्द के साथ व्यतीत करता है। इसके विपरीत जो अधर्म के काम करता है, जिसका खान पान व्यवहार अचार-विचार नियमानुकूल नहीं वह प्राणी सदैव दु:ख पाता है। उसका कल्याण नहीं हो सकता और सदैव स्वयं भी कष्ट भोगता है औरों को भी दुखी करता है। इसी विशेष सुख और आनन्द का नाम स्वर्ग है और इसी प्रकार भोगे जाने वाले कष्टों और दु:ख विशेष का नाम नरक है।

संसार में कोई भी विशेष स्थान ऐसा नहीं जिसे स्वर्ग या नरक कहा जा सके। यह धारणा कि मर कर किसी को स्वर्ग या नरक मिलेगा पूर्णतया गलत है। मरनोपरान्त तो अपने किए हुए कर्मों के अनुसार दूसरा जन्म ही मिलता है। व उसी प्रकार दूसरे जन्म की क्रीडा कर फिर मृत्यु और फिर जन्म और यह सिलसिला न जाने कब से चल

रहा है तथा कब तक चलता रहेगा। यह सोचना भी सही नहीं है कि मरकर हमें यमराज की कचहरी में जाना पड़ेगा और वह हमारे कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक में भेज देगा या यह सोचना कि कयामत के दिन अल्लाह हमें मरजी से जन्नत में भेजेगा या दोजख़ की आग में जलाएगा भी पूर्णतया गलत हैं हमें अपने किए कर्मों का फल साथ-साथ भी मिलता रहता है या कुछ ऐसे कर्म हैं जो संचित होते रहते हैं और उनका फल किसी और जन्म में मिल जाता हैं। हर कर्म का फल प्रभु के न्याय से यथा समय मिलता है। हर जन्म में प्राणी जितना समय सुख अनुभव करता है उतने समय वह स्वर्ग में है और जितना समय कष्ट अनुभव करता हैवह तब तक नरक में है। बहुत से सब कुछ होते हुए भी दुःखी हैं और बहुत से निर्धन होते हुए भी सुखी हैं। जो सुखी हैं वे स्वर्ग में हैं जो दुखी हैं वे नरक में है।

सुख और आनन्द

इन दोनों शब्दों में बहुत अन्तर है। दोनों ही स्थितियों में मनुष्य दुखों से दूर रहता है सुख शारीरिक होता है जबकि आनन्द मानसिक होता है। सुख अस्थायी होता है और आनन्द चिरकाल तक रहने वाला है। जो सुखी होता है तो यह जरूरी नहीं कि वह आनन्दित भी हो परन्तु जो आनन्दित है वह सदा सुखी भी हो इसमें कोई गल्त बात नहीं। यह बात स्पष्ट करने के लिए हमें अपने वातावरण और अपने रहन-सहन को देखना पढेगा। जो वस्तु कभी सुख का कारण है या जिसे पाकर हम सुख का अनुभव करते है कुछ न्यून का अधिक होने पर या कुछ समय पश्चात वही दुख का कारण बन जाती है। जैसे एक व्यक्ति को भूख लगती है उसे चार पांच रोटियां और शाक सब्जी दे दे वह खालेगा, उसकी भूख मिट जाएगी तथा उसे सुख की अनुभूति होगी। परन्तु यदि उसी व्यक्ति को जो रोटियों के लिए तडप रहा था दो चार और फालतू रोटियां खाने पर विवश कर दे तो वही रोटियां दुख का कारण बन जाएगी। सुख के साधन खरीदे जा सकते हैं। प्राप्त किए जा सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उनसे सुख ही मिलेगा। कालान्तर में वही साधन दुख भी बन जाते हैं।

आनन्द के साधन खरीदे नहीं जाते। जिसे आनन्द मिल गया वह कभी फिर वापिस चला नहीं जाता। एक व्यक्ति शारीरिक रूप से दुखी दिखाई दे रहा है, निर्धन है, पूरे सुख के साधनों का अभाव उसके पास है परन्तु यदि उसने उन्हीं में सन्तोष धारण कर लिया, अपने आप को उन्हीं परिस्थितियों में ढाल लिया तो वह फिर भी आनन्दित है। लाखों करोड़ों रूपये, धन माल ऐश्वर्य के साधन, कोठी, कार, बंगले, भाई, बहन, स्त्री, बेटे और अन्य परिवार होते हुए भी एक व्यक्ति अपने को सुखी भी अनुभव नहीं करता,

आनन्दित तो कहां से होगा। परन्तु इन सभी साधनों से रहित एक सन्यासी साधु योगी महात्मा अपने त्याग और सन्तोष के कारण अपने आपको अत्यन्त सुखी और आनन्दित अनुभव करता है। किसी को नरम गद्दे बिछे हुए बिस्तर पर भी नींद का सुख नहीं मिलता जबकि दूसरा भूमि पर बिना बिस्तर के ही लेटा हुआ ऐसी निंद्रा का आनन्द लेता है कि जिसका की कोई ठिकाना नहीं। सारांश यह है कि अनुकूल परिस्थितियों में एक वस्तु सुख का साधन है, प्रतिकूल स्थितियों में नहीं। भोजन खरीदा जा सकता है, स्वास्थ्य नहीं, कपडे जेवर खरीदे जा सकते हैं, रंग रूप नहीं, औषधि खरीदी जा सकती है, निरोगता नहीं, बिस्तर खरीदा जा सकता है, निद्रा नहीं, सुख के साधन खरीदे जा सकते हैं, सुख नहीं। इसी प्रकार सूर्य की गर्मी, आग की तपिश, और गर्म कपड़े सर्दी में सुख के साधन हैं, गरमी में नहीं। ठण्डी जल वायु, गर्मियों में अच्छी लगती है। सर्दियों के मौसम में नहीं। भूख में रूखा-सूखा भोजन भी सुख देगा परन्तु बिना भूख स्वादिष्ट भोजन भी दुख ही देगा। इच्छानुसार भोजन सुख देगा, अधिक भोजन से दुख ही होगा। मोह, लोभ, अहंकार, काम और क्रोध दुख के कारण है। शील, त्याग, संतोष, दया ये सब सुख एवं आनन्द के कारण है। इनको ग्रहण एवं धारण करने वाला कभी दुखी नहीं होगा अपितु प्रभु की कृपा का पात्र सदैव आनन्द पाएगा।

जीवन कैसे व्यतीत करें

पूर्व पृष्ठों में कई स्थानों पर बताया गया है कि हर प्राणी को अपने किए हुए कर्मो का फल अवश्य भोगना पड़ता है। चाहे हंसकर भोगे या रोकर, चिल्लाकर। तो क्यों न हम अपने जीवन में सुख दुख आने पर सदा मुस्कराते रहें। सुख में तो हर कोई हंसता ही है। मजा तो तब है जब दुख में भी हम चिन्ता करना और क्रोधित होना छोडकर हर्षाते रहें। इस जीवन को सदा वीरों की तरह ही हंसते हंसते व्यतीत करना चाहिए। हमारी कितनी ही बड़ी हानि होवें हमें परेशान नहीं होना चाहिए। वीर पुरूष वे होते हैं जो मुसीबत के आने पर भी घबराते नहीं है। वह इन्सान क्या जो सामने आई मृत्यु का हंसकर मुस्कराकर मुकाबला नहीं करते। बहुत से व्यक्ति थोड़े से संकट में आत्महत्या की बात सोचते हैं।

आत्महत्या बहुत बड़ा पाप है। इससे कोई समस्या नहीं सुलझती अपितु हमारे दुष्कर्मो में एक और पाप जुड़ जाता है। आश्चर्य तो यह है कि जो व्यक्ति मृत्यु से नहीं डरता वह जीवित रहने से क्यों डरे क्यों न संकट से डटकर लडाई करें। हमारे रोने - धोने, चिल्लाने से दुख कम नहीं होगा अपितु और अधिक बढ़ता हुआ दिखाई देगा। यदि हम अपने मन में दुःख की बात ही न लायें तो जिस प्रकार एक डाक्टर पहले किसी

अंग को सुन्न कर देता है और फिर चीर फाड़ करता है, उसी प्रकार हमारे लिए दुःख दुःख न रहेगा। दुःख दर्द, कष्ट, कलेश को कभी इस भाव से न लें। हंसते खेलते मुस्कराते यह अनुभव करें कि हमें कोई कष्ट नहीं है तो वास्तव में वह कष्ट का संकट का समय वैसे ही बीत जाएगा कि जैसे आया ही न हो।

हमारा दैनिक कार्यक्रम

मनुष्य को यह जीवन सादा और उच्च विचारों से परिपूर्ण बनाना चाहिए। हम इस जीवन को आनन्द के साथ बिताएं तभी कुछ लाभ है। आनन्द पाने के लिए हमें कुछ ऐसे नित्य कर्म करने चाहिए कि जिनसे हमारा कल्याण हो। वे नित्य कर्म निम्न प्रकार हैं।

१ ब्रह्म यज्ञः-इसके अन्तर्गत हमें दोनों समय अपने परम् पिता परमात्मा में ध्यान लगाना चाहिए। नहा -धोकर या समयानुकूल हाथ-मुंह धोकर एकान्त स्थान में बैठकर प्रभु का ध्यान करें। अपने किए हुए कर्मों पर नित्य चिन्तन करें। दुर्गुणता यदि कोई हो उसको दूर भगाने का प्रयत्न करें। जो लेने की इच्छा हो प्रभु से मांगे और तदानुकूल आचरण भी करें। इस यज्ञ का दूसरा नाम सन्ध्या भी है। इसका अर्थ अच्छी प्रकार ध्यान करना और स्वाध्याय भी करना हैं। इससे हमारे सभी दुर्गुण काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि भाग जाएंगे तथा हमारा जीवन पवित्र होगा।

२ देवयज्ञः- यज्ञ हवन करना। शुद्ध घी व साम्रगी, शुद्ध और दोष रहित लकड़ी की समिधाओं में अग्नि प्रज्वलित कर उसमें डाले। वेद मंत्रों को बोलकर उनका उच्चारण भी शुद्ध हो उनके अर्थो को समझते हुए हमें दैनिक दोनों काल प्रातः सांय या कम से कम एक यज्ञ हवन करना चाहिए। इससे जहां हमारा वातावरण शुद्ध होगा रोगों के कीटाणु दूर भाग जाएगें। जो दुर्गंध मल मूत्र तथा पसीने से हम वायुमण्डल में फैकतें हैं उसका प्रतिकार भी हो जाएगा। उसके पाप से बचेगें। हमारा शरीर स्वस्थ एवं निरोग होगा और हम शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होकर बहुत ही उत्तम जीवन भोग सकेगें।

३ पितृयज्ञः-अपने जीवित माता पिता आचार्य और बडे बूढ़ों की सेवा करना ही पितृयज्ञ है। अपने ऋण से उऋण होने के लिए यह परम आवश्यक है। अपने बड़ों का मान आदरमान करें, उन्हें भोजन वस्तुएं दें उनकी हर आवश्यकताओं की पूर्ति करें। ऐसा करने से हमें आलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। जो गृहस्थी अपने बडे बूढ़ों की सेवा नहीं करते वे भी अन्त काल में दुख के भागी बनते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारी

सन्तान भी हमारे कहने में रहे, हमारा ध्यान रखे तो हमारा भी परम कर्तव्य है कि हम अपने माता पिता को स्वयं दुख उठाकर भी प्रसन्न रखें। उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न आने दें।

४ **बलिवैश्व देव यज्ञ**:-संसार में मनुष्य केवल अपने लिए ही न सोचे। कितने ही पशु-पक्षी, जीव-जन्तु ऐसे हैं जिन्हें जल और अन्न की आवश्यकता होती है। हमारा कर्तव्य है कि अपने भोजन में से उन जीव जन्तुओं, पशु-पक्षियों के लिए भोजन निकालें और उन्हे खिलाएं। वे मूक प्राणी जो बोल नही सकते, स्वयं भोजन नही बना सकते उनको भोजन देने से हमें मानसिक शान्ति प्राप्त होगी और हमारा भी बडा उपकार होगा।

५ **अतिथि यज्ञ**:-हमारे घर बिना सूचना से कोई व्यक्ति आ जाता है तो उसकी सेवा करना उसे आसन जल और भोजन देना हमारा एक महान कर्तव्य है। साधु सन्यासी कोई विद्वान घर पर आ जाए तो उसका पूर्ण आदर मान करना चाहिए, उसकी इच्छा पूर्ति करके उससे बदले में कोई शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

संक्षेप में ये पांच यज्ञ बताए हैं। इन्हें अपने जीवन में धारण करें तो इससे जहां हमारा कल्याण होगा। वहां हम मोक्ष के भागी बनेगें। वहां संसार में सुख और शान्ति की भी स्थापना होगी इसमें कोई संदेह नहीं।

विनम्र निवेदन

बहुत से सीधे साधे सरल एवं सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में बहुत ही संक्षेप से अपनी बात आपके सामने प्रस्तुत की है। वास्तविकता जो है वह दर्शाने का प्रयत्न किया है। इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यसमाज वाले ही ईश्वर को मानते हैं। राम, कृष्ण व दूसरे पूर्वजों को पूरा सम्मान व आदर देते है। और उनको बहुत ही महान पुरूषों का दर्जा उनके अपने महान गुणों एवं कार्यों के कारण देते है उन्हें अवतार कहकर उनके मूल्य को कम नहीं करते। देवी देवताओं को जैसे मानना चाहिए वैसा ही मानते हैं। प्रभु का सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वअर्न्तयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टि कर्ता मानते हैं। उसी की ही उपासना करनी चाहिए उससे कोई बढ़ कर तो क्या कोई उसके बराबर भी नहीं है। कोई उसका विशेष प्रतिनिधि नही है। जो सृष्टि के आरम्भ में वेद ज्ञान उसने दिया था वही अन्तिम है वही पक्का है, उसमें किसी भी प्रकार की कोई भी संशोधन की आवश्यकता या गुंजाईश नहीं है। जो वेदों

में दर्शाया है वही हमारा धर्म है मनुष्य कृत मतमतान्तरों से भेदभाव को बढ़ावा मिलता है। अतः वे मानने योग्य नहीं। हां वेदानुकूल उनमें जो बात हो वह वेद की बात होने से अवश्य माननीय है। यदि दूध में पडे विष के समान यदि उसको त्याग भी दिया जाए तो हानि के स्थान पर लाभ ही होगा। यदि कोई पक्षपात रहित और बिना किसी पूर्वाग्रह की दृष्टी से देखे तो उपरोक्त सभी बातें सच्चाई ही दिखेंगी। तथा सच्चाई ही मानने योग्य होती है। यदि कोई विवाद के लिए और मैं न मानूं की रट लगाते हुए उन्हें न माने तो उसकी इच्छा। बुद्धिमानों के लिए तो थोडा ही बहुत होता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

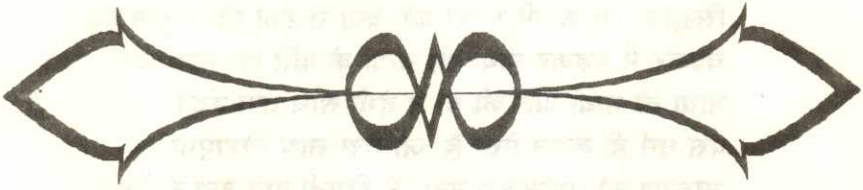

प्रभु से प्रार्थना

तेरे चरणों में प्रभु जो आ गए।
दिव्य आनन्द का वे स्रोत पा गए।
उलझने जीवन में उनके जो भी थी,
अपनी सारी उलझनें सुलझा गए।
छोडकर संसार की सब झंझटें,
वे पदार्थ चारों ही फिर पा गए।
चक से आवागमन के मुक्त हो,
तेरे पावन तेज में वे समा गए।
कामनाएं उनकी सब पूर्ण हुई,
योग साधन साधना अपना गए।
'पाल' को उनमें बिठा लो हे पिता,
तेरी भक्ति में ही जो चित्त ला गए।

सीधे रस्ते आ बन्दे

अब छोड़के टेडे रस्ते को तू सीधे रस्ते आ बन्दे
बदियों को मन से दूर हटा, नेकी के कर्म कमा बन्दे।
यूं छिप-छिपकर के दुनिया से तू चाहे जैसे कर्म करें,
उस ईश की नजरों से लेकिन, न कुछ भी सकेगा छिपा बन्दे
जैसे-जैसे कर्म करेगा, वैसा ही फल पाएगा
चाहे कितना पूजा पाठ तू कर, चाहे कितनी भेंट चढा बंदे
है वेश तो तेरा साधू का, पर कर्ता कर्म है डाकू का,
सिद्धान्त जो करनी भरणी का, क्यों उसको दिया भुला बंदे
चक्कर में पडकर माया के, माया के पति को भूल गया,
माया तो माया पति की है, न देगी साथ तेरा बंदे।
बस धर्म ही केवल ऐसा है, जो तेरा साथ निभाएगा,
आचरण को धर्मानुकूल बना, ले बिगड़ी बात बना बन्दे।
हो 'पाल' विमुख परमेश्वर से, तू उलझ गया है, उलझन में,
तू शरण में आ जगदीश्वर की और उलझन को सुलझा बंदे।

आर्यसमाज के नियम व उद्देश्य

१. सब सत्य विद्याएं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर स्च्दानंदस्वरूप, निराकार, स्र्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादी, अनुपम, स्र्वाधार, स्र्वेश्वर, स्र्वव्यापक, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने औश्र सत्य के छोड़नें में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारिरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक, स्र्वहितकारी, नियम पालने में प्रतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।।

PRINTED AT COMPUTERIZED PRINTERS. Chandni Chowk, KAITHAL-132 027.